रचयिता –

आचार्य दीपङ्कर

भूमिकाकार –

डा० सम्पूर्णानन्द

मुख्य मंत्री – उत्तर प्रदेश

कुरु प्रकाशनम्

दीपावली १९५७ प्रथम संस्करणम्

[illegible] —
चन्द्र "सुमन"
हित्य एकेडमी
नई देहली

पुस्तक प्राप्ति स्थान —

सरस्वती प्रेस, मेरठ

★

मूल्य — सवा रुपया

मुद्रक —
सरस्वती प्रेस, मेरठ।

भूमिका

डा० सम्पूर्णानन्द

उत्तर प्रदेश सरकार

भूमिका

साधुवादार्हा हि आचार्य दीपङ्कर महोदयाः ।

नाहं कविः, काव्यमर्मज्ञः साहित्य पण्डितो वा । काञ्चित् पद्यरचनां के के काव्यगुणा अलंकुर्वन्ति के वा काव्य दोषास्तस्याः कलेवरं मलिनीकुर्वन्ति इति निर्णेतुं नास्ति मेऽधिकारः । परन्तु वाक्यलालित्यं, उपमासौष्ठवं, स्वभावोक्तिः प्रसादश्च कस्य हृदयं न स्पृशन्ति । अयं "शैशव-स्वप्नम्" इत्याख्यः स्फुट पद्य संग्रह एभिर्गुणैः गुम्फितो दृश्यते । अत एव मया रचयित्रे साधुवादोऽर्पितः ।

अन्यच्च महत्तरं कारणं वर्त्तते । नास्ति विशाले संस्कृत वाङ्मये सूक्तीनामभावः । परन्तु प्रकीर्णं विषयानुद्दिश्य एवंविधानां कृतीनां समुच्चयस्तत्र विरलं दृश्यते । यान् विषयान् चिन्वन्ती कवेः प्रतिभा अत्र व्यक्तीभूता तेऽपि गिर्वाणवाङ्मये न हि साधारणतः समादृश्यन्ते ।

"उषसः प्रथमं किरणं प्रति"
"मृत्युम्प्रति"
"गुंजतु गगने तव गीतम्"

इत्यादि निदर्शने अलम् ।

अन्यैरपि कविभिः कोकिल उद्दीपन प्रसंगे स्मृतः, सरस्वती वन्दनं च कृतम् । किन्तु आचार्य दीपङ्करस्य रचनायां आधुनिक लौकिक भाषासु व्याप्तस्य आलोकस्य या छाया स्फुटीभवति सा कमपि नूतनं माधुर्यमुत्पादयति ।

भूमिका

आचार्य दीपङ्कर बधाई के पात्र है !

मैं न तो कवि हूँ, न काव्य मर्मज्ञ और न साहित्य का पण्डित। किसी कविता को कौन कौन से काव्य गुण अलंकृत करते हैं और कविता के कौन से दोष उसका शरीर मैला कर देते हे, इसका निर्णय करने का अधिकार मुझे नही है। परन्तु वाक्यों कि ललितता, उपमाओं की सुन्दरता, स्वभाविक उक्ति और प्रसाद किसका हृदय नहीं छू लेते ? "शैशव स्वप्नम्" नामक फुटकर कविताओं का यह संग्रह ऐसे समस्त गुणों से गुंथा प्रतीत होता है। इसीलिये मैंने इसके रचयिता को साधुवाद अर्पित किया है !!

इससे भी बड़ा इसका दूसरा कारण है ! विशाल संस्कृत वाङ्मय मे सूक्तियों का कतई अभाव नहीं है। परन्तु फुटकर विषयों को लेकर इस प्रकार की रचनाओं का संग्रह बिरला ही कहीं दीखता है और कवि की प्रतिभा ने यहाँ जिन विषयों को चुना है वे भी संस्कृत वाङ्मय मे साधारणतया कहीं दिखाई नहीं देते।

"उषा की पहली किरण के प्रति"

"मृत्यु के प्रति"

"आकाशमें तेरा गीत गूंजे"

इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

दूसरे बहुत से कवियों ने भी उद्दीपन के प्रसंग में कोयल की याद की है और सरस्वती की वन्दना की है। परन्तु आचार्य दीपङ्कर की रचनाओं में आधुनिक लौकिक भाषाओं में जो आलोक (प्रकाश) छाया हुआ है। उसका प्रतिबिम्ब जिस तरह पड़ा है उसने सर्वथा नये ढंग की एक मधुरता उत्पन्न कर दी है।

सरस्वती प्रार्थनायां

"किं निर्दये ! तनयवत्सलतापि मातुः
स्वाभाविकी कृतपदा त्वयि नास्ति मातः ?
बालस्य मातृचरणं शरणं गरिष्ठं
त्वं वेत्सि चेत् क्षिपसि किं हतचेतसं माम् "।।

इमाः पंक्तयो देव्यपराधे क्षमापन स्तोत्रस्य इमां प्रसिद्धां उक्तिं स्मारयंति :—

"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति"

सन्ति बहूनि स्थलानि यत्र कवे र्हृदयावेगः अबाधितया गत्या उच्छलति, तस्य मार्मिक निष्ठानां च असन्दिग्धं परिचयं ददाति ।

नहि दीपङ्करः केवलं कोमल कल्पना जगति जीवनं यापयति । किन्तु व्यवहार लोके रूढिव्यूहं सम्मर्दयन् कठोरतमे राजनैतिक क्षेत्रेऽपि महात्म गान्धिना लब्ध स्फूर्ति र्हि कर्मनिष्ठो वर्तते ।

रचनासु तस्य हृदयद्वन्द्वं स्पष्टतरं प्राकट्यं प्राप्नोति । स्वाभिमत कर्ममार्गं अनुसरन्नपि स भगवत्या भारत्या अर्चनं कदापि न त्यजेदिति आशास्महे ।।

— सम्पूर्णानन्द
मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

लखनऊ. अक्तूबर ४, १९५७

सरस्वती प्रार्थना की

"हे निर्दये ! क्या माता का स्वाभाविक प्यार तक तुझमें नहीं रहा ?
सभी कहते हैं:—माता के चरण बच्चे का सबसे विश्वस्त आसरा होते हैं;
और तू इसे जानती भी है—
फिर भी हे माता ! मुझ अभागे को फेंक रही हो ?"

ये पंक्तियाँ ऐसी हैं जो कुपित देवी से क्षमा मांगती उस उक्ति को याद ताजा करती है :—

"पूत कुपूत हो सकता है, परन्तु माता कुमाता नहीं होती।"

ऐसे कितने ही स्थल हैं जहां कवि के हृदय का आवेग बेरोक-टोक गति से उछल पड़ता है और उसके हृदय की मार्मिक भावनाओं तथा मान्यताओं का असन्दिग्ध परिचय देते रहते हैं !

दीपङ्कर केवल कोमल कल्पना की दुनिया में जीवन व्यतीत नहीं करते; बल्कि व्यावहारिक दुनिया में रूढ़िवाद के व्यूह पर कठोर आक्रमण करते हुए कठिन राजनैतिक क्षेत्र में भी महात्मा गान्धी के विचारों से स्फूर्ति लेकर कर्मनिष्ठ कार्यकर्ता हैं।

रचनाओं में उनके हृदय का द्वन्द्व बहुत साफ तौर पर प्रकट होता रहता है ! अपने मनचाहे कार्यक्रम और राजनैतिक कामों का पालन करते हुए भी वे भगवती सरस्वती की अर्चना करना कभी न छोड़ेंगे, मैं ऐसी आशा करता हूं।

सम्पूर्णानन्द

लखनऊ, अक्तूबर ४, १९५७ — मुख्यमंत्री, उत्तरप्रदेश

अनुवादक के दो शब्द

आचार्य दीपङ्कर की शैशवकालीन कविताओं को प्रकाश में लाने का श्रेय मुझी को मिल सका, इस पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

यों ही एक दिन उनके कागज़ टटोलते-टटोलते ये कवितायें मेरे हाथ पड़ गईं। इस प्रकार की उच्च और सजीव कवितायें यों दबी रहे मुझे बहुत दुःख हुआ। फिर आचार्य दीपङ्कर जी को भी उलहना क्या देता ? उन्हें गरीब जनता और उसके आन्दोलनों से फुरसत मिले, तभी तो ये प्रकाश में आवें !

आचार्य दीपङ्कर का पूरा जीवन ही कवितामय है। जिस प्रकार का भाषा सौष्ठव, प्रसाद गुण, स्वभावोक्ति और भावों की उच्चता तथा स्पष्टता के गुण यहाँ प्रकट हुए हैं, उन्हें शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। एक तो संस्कृत भाषा में कविता करना और फिर १३ साल तक पूरी तरह निरक्षर चरवाहा रहकर १६, १७ साल की उम्र में ऐसी भाषा और विचार व्यक्त करना दूसरे बड़े आश्चर्य की बात है ! हम साहित्य सेवियों के लिये यह सबक के समान है कि जनता मे से उत्पन्न उसके बेटे जब अपनी जनता-माता से सम्बन्ध बनाये रखते हैं तो उनकी लेखिनी में कितना बल और स्पष्टता आ जाती है। जनता को भी अपने इस वफादार बेटे से कितना प्यार है, यह इसी से प्रकट है कि कांग्रेस और उसकी तमाम विरोधी पार्टियों को पराजित करके बडौत (मेरठ) क्षेत्र की जनता ने पार्टियों, जात-बिरादरी और धार्मिक रूढियों तथा धन को ठुकराकर उन्हें विधान सभा का सदस्य चुना है। वास्तव में जनता की निगाहें कभी धोखा नहीं देतीं।

यदि पाठकों ने आचार्य जी का "शैशव स्वप्नम्" पसन्द किया तो हमें उनका 'यौवन गीतम्' भी सामने लाने की प्रेरणा मिलेगी।

जनता के सिपाही के ये गीत जनता को अर्पित है।

साहित्य एकेडेमी, — क्षेमचन्द्र "सुमन"

नई देहली, १७-१०-१९५७

अपनी ओर से

'सुमन जी ने मेरा शैशव आपके सामने रख ही दिया ! न जाने कितनी गलतियां होंगी इसमे, पर क्या करूं ? महामुनि पाणिनि भी नाराज हो गये हैं, कहीं – कहीं। पर बूढ़ों की कौन सुने ! उनकी चले तो कोई बच्चा घर से बाहर पांव ही ना धरे !!

मैं डा० सम्पूर्णानन्द जी का विशेष रूपसे आभारी हूं जिन्हों ने राजकाज की व्यस्तता से अवकाश लेकर शैशव के ये सुपने देखे और उनके सम्बन्ध में इतने विस्तार के साथ लिख दिया ! वास्तव में इससे उनका संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति गहरा अनुराग ही प्रकट होता है।

मैं न तो कवि हूँ, न साहित्य सेवी और न लेखक। जनता का कार्यकर्त्ता और सिपाही हूं। शैशव में भी अध्ययन करना और जीवन-साधन जुटाना ये ही दो काम थे। तीसरा था उस सामाजिक विषमता से घृणा करना जिसने मेरे जैसे बहुतों को परेशान कर रखा था। वह कठोर संघर्ष कभी कभी पंक्तियों में बन्ध जाता था। यदि उसे 'कविता' कहा जाय तो जरूर यह कविता–संग्रह ही है। अन्यथ तो यह बचपन का सुपना ही है ! और इसी रूप में आपके हाथों में अर्पित है। सुमनजी को भी इसके लिये धन्यवाद !

दीपावली, १९५७ (मेरठ) — दीपङ्कर

अनुवादक के दो शब्द

आचार्य दीपङ्कर की शैशवकालीन कविताओं को प्रकाश में लाने का श्रेय मुझी को मिल सका, इस पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

यों ही एक दिन उनके कागज टटोलते-टटोलते ये कवितायें मेरे हाथ पड़ गईं। इस प्रकार की उच्च और सजीव कवितायें यों दबी रहें मुझे बहुत दुःख हुआ। फिर आचार्य दीपङ्कर जी को भी उलहना क्या देता? उन्हें गरीब जनता और उसके आन्दोलनों से फुरसत मिले, तभी तो ये प्रकाश में आवें!

आचार्य दीपङ्कर का पूरा जीवन ही कवितामय है। जिस प्रकार का भाषा सौष्ठव, प्रसाद गुण, स्वभावोक्ति और भावों की उच्चता तथा स्पष्टता के गुण यहां प्रकट हुए हैं, उन्हें शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। एक तो संस्कृत भाषा में कविता करना और फिर १३ साल तक पूरी तरह निरक्षर चरवाहा रहकर १६, १७ साल की उम्र में ऐसी भाषा और विचार व्यक्त करना दूसरे बड़े आश्चर्य की बात है! हम साहित्य सेवियों के लिये यह सबक के समान है कि जनता में से उत्पन्न उसके बेटे जब अपनी जनता-माता से सम्बन्ध बनाये रखते हैं तो उनकी लेखिनी में कितना बल और स्पष्टता आ जाती है। जनता को भी अपने इस वफादार बेटे से कितना प्यार है, यह इसी से प्रकट है कि कांग्रेस और उसकी तमाम विरोधी पार्टियों को पराजित करके बड़ौत (मेरठ) क्षेत्र की जनता ने पार्टियों, जात-बिरादरी और धार्मिक रूढ़ियों तथा धन को ठुकराकर उन्हें विधान सभा का सदस्य चुना है। वास्तव में जनता की निगाहें कभी धोखा नहीं देतीं।

यदि पाठकों ने आचार्य जी का "शैशव स्वप्नम्" पसन्द किया तो हमें उनका 'यौवन गीतम्' भी सामने लाने की प्रेरणा मिलेगी।

जनता के सिपाही के ये गीत जनता को अर्पित हैं।

साहित्य एकेडैमी, — क्षेमचन्द्र "सुमन"

नई देहली, १७–१०–१९५७

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ		पृष्ठ
१ उषसः प्रथमं किरणं प्रति	.... २	– उषा की पहली किरण से	.... ३
२ धरित्रीम्प्रति	.... ८	– धरती से	.... ९
३ मृत्युम्प्रति	....१२	– मृत्यु से	....१३
४ ममतां प्रति	....१८	– ममता से	....१९
५ सेवाग्रामस्य सन्त प्रति	....२४	– सेगांव के सन्त के प्रति	....२५
६ सरस्वती प्रार्थना	....३०	– सरस्वती प्रार्थना	....३१
७ कोकिलं प्रति	....३६	– कोकिल से	....३७
८ भारत भूमिं नमामि	....४६	– भारत भूमि को नमस्कार !	....४७
९ लेनिनो जयति	....५२	– लेनिन की जय हो !	....५३
१० आषाढ़ मेघं प्रति	....५८	– आषाढ़ के मेघ से	....५९
११ दीपदानम्	....६६	– दीपदान	....६७
१२ दयानन्दं प्रति	....७२	– दयानन्द के प्रति	....७३
१३ कालिदासं नमामि	....८०	– कालिदास को नमस्कार !	....८१
१४ गुंजतु गगने तव गीतम्	....९०	– आकाश में तेरा गीत गूंजे	....९१
१५ जीवन सम्बोधनम्	....९६	– जीवन से दो बातें	....९७

शैशव-स्वप्नम्

उषसः प्रथमं किरणं प्रति

(१)

प्रथम किरण ! पीतं व्यर्थमेवाननं ते
जगदभिभवभूतं वीक्ष्य गाढान्धकारम् ।
अयमिह कलुषात्मा मानिनां मार्गरोधी
तव नयननिपातेषु क्षणेनान्तमेति ॥

(२)

अयि, किरण ! किमर्थं निर्बलं मन्यसे त्वं
लघुरशनिरहोऽसौ शैलशृङ्गं निहन्ति ।
युवति ! तव तु पृष्ठे तैजसानां निधानं
अनुसरति सदाऽसावन्ध साम्राज्यवैरी ॥

उषा की पहली किरण से

(१)

ओ, पहली किरण उषा की !
संसार को फीका डाल कर छाये गाढ़े अन्धकार को—
देख-देख कर,
व्यर्थ में तेरा चेहरा पीला पड़ गया !
मानियों का मार्ग रोकनेवाला, काले हृदय का—
यह अन्धकार,
तेरी निगाहों के पड़ते ही स्वयं नष्ट हो लेगा !!

(२)

अरी, किरण !
क्यों अपने आपको निर्बल मान बैठी हो ?
वह छोटा सा वज्र—
पर्वतों की चोटियाँ काट फेंकता है !
हे युवति !
और तेरी पीठ के पीछे पीछे तो—
अन्धकार के साम्राज्य का वैरी,
समस्त तेजों का भण्डार वह सूरज भी —
कदम बढ़ा कर चलता फिरता है !!

(३)

त्वयि नभसि प्ररूढे गर्वदीप्ते मयूख !
सकलमुडुप जालं लज्जयाऽस्तं प्रयाति ।
गहनतमसि दीप्तं तत्तु दीप्तं किमस्ति
तदिह भवति दीप्तं स्पर्द्धया यद्विभाति ॥

(४)

अयि, किरण ! किमर्थं गर्वितं मन्यसे त्वं
सकलमुडुपजालं निष्प्रभं चिन्तयित्वा ।
तव भवति विभेयं भास्करस्वागतेषु
प्रथयति जनमार्गं तत्तमःसङ्कटेषु ॥

(३)

हे किरण !

जब गर्व से चमचमाती तुम —

क्षितिज पर चढ़ी चमकने लगती हो,

तारों का यह जंजाल लज्जा से मुंह ढक लेता है !

जो गहरे अन्धकार में चमके, वे क्या चमके ?

होड़ करके चमकना ही चमकना कहलता है !!

(४)

ओ, किरण !

क्यों गर्व से फूली नहीं समाती तू ?

यह देख कर कि तेरे सम्मुख तारे फीके पड़ गये !

सूर्य के स्वागत की तैयारियों के अवसरों पर ही, —

तेरा यह ताम-झाम देखा जाता है !!

और अन्धकार की संकटपूर्ण घड़ियों में —

ये लोगों को राह बताते हैं !!!

(३)

त्वयि नभसि प्ररूढे गर्वदीप्ते मयूख !
सकलमुडुप जालं लज्जयाऽस्तं प्रयाति ।
गहनतमसि दीप्तं तत्तु दीप्तं किमस्ति
तदिह भवति दीप्तं स्पर्द्धया यद्विभाति ॥

(४)

अयि, किरण ! किमर्थं गर्वितं मन्यसे त्वं
सकलमुडुपजालं निष्प्रभं चिन्तयित्वा ।
तव भवति विभेयं भास्करस्वागतेषु
कथयति जनमार्गं तत्तमःसङ्कटेषु ॥

(३)

हे किरण !
जब गर्व से चमचमाती तुम —
क्षितिज पर चढ़ी चमकने लगती हो,
तारों का यह जंजाल लज्जा से मुंह ढक लेता है !
जो गहरे अन्धकार में चमके, वे क्या चमके ?
होड करके चमकना ही चमकना कहलता है !!

(४)

ओ. किरण !
क्यों गर्व से फूली नहीं समाती तू ?
यह देख कर कि तेरे सम्मुख तारे फीके पड़ गये !
सूर्य के स्वागत की तैयारियों के अवसरों पर ही, —
तेरा यह ताम-झाम देखा जाता है !!
और अन्धकार की संकटपूर्ण घड़ियों में —
ये लोगों को राह बताते हैं !!!

(५)

तरुणि ! शिखरिबाधां तत्तमो लंघयित्वा
नभसि समुदिता त्व शोभसे गर्वितश्रीः ।
त्वयि किरति स लोकः प्रेमदीर्घं कटाक्ष
नमयति विजयश्रीः कष्ट दुःसाहसेषु ॥

(६)

युवति ! दुरभिमानी मार्गरोध्यन्धकारो
तरणिमपि स पापो गर्वितो मज्जयित्वा ।
तव मधुमुखतेजस्तं प्रकामं निहन्ति
नहि पुरुष जितो यो योषिता कामजय्यः ॥

(५)

हे युवति !

पहाड़ों की बाधा तुमने पांवो तले रोन्दी,

गहरे अन्धकार का सीना तुमने चीरा,

और गर्व से चमचाते चेहरे के साथ तुम —

पूर्व के क्षितिज पर आ धमकी हो !!

यह संसार अपने प्रेम से दीर्घ कटाक्षों को —

तुझी पर न्योछावर कर रहा है !!

जो कष्ट झेलते हैं, दुःसाहस करते हैं —

और विजय लक्ष्मी प्राप्त करते हैं —

संसार उन्हें नमस्कार किया ही करता है !!!

(६)

इस पापी और दुरभिमानी, तथा —

मार्ग रोकने वाले अन्धकार को तो देखो —

सूरज तक को डुबा कर यह गर्व में फूला नहीं समाता !

तेरे प्यारे मुख का तेज —

उसे कितनी सरलता से मार भगाता है !!

जिसे पुरुष नहीं जीत पाते — स्त्रियां उसे –

यों ही जीत लेती है !!!

धरती से

(१)

हे धरती !
हम गोद में तेरी पैदा हुए, तेरे औरस बच्चे और,
लगातार तेरी ही गोद में खेल कर बड़े हुए —
पर कितने अभागे हैं हम —
तुझे अपनी कह कर नहीं पुकार सकते !
हे देवी ! यह देखो, विधि की विडम्बना !
जिन्होंने कभी तुम्हारे चरण नहीं छुए — तुम्हारी सोन्धी गन्ध
(मेघ के सम्पर्क से उठी हुई) जिन्होंने कभी सूंघी तक नहीं !!
माँ की तरह तुम्हारे चरण कभी नहीं चुचकारे —
वे तुम पर अधिकार किये बैठे हैं !!

(२)

हे माता ! क्या दुष्ट विधाता ने जन्म के समय से ही —
बाट कर तुझे उनके हिस्से में दे दिया था ?
तो हमारा जन्म ही क्यों किया उसने —
यदि तुम्हारे चरणों पर हमारा अधिकार ही नहीं रखना था !
विश्व धारण करने वाली, हे धरती !
वास्तव में विधाता का नहीं, यह तेरी ही सहनशीलता का दोष
है !!
यदि नहीं तो मैं तब जानूं —
यदि कोई भभकते सूरज को अपने अधिकार में ले ले !!!

धारेत्रोम्प्रांते

(१)

अङ्के ते जनितस्तवैव तनया अंके च ते क्रीडिता
आत्मीयां भवतीं तथापि कृपणा वक्तुं न हा शक्नुमः ।
स्पृष्टा येनं रजःकणा न सुरभिः प्रातश्च मेघोत्थितो
नाम्बाया इव मानित तव पदं ते साधिकारास्त्वयि ॥

(२)

किं दत्ताऽम्ब ! विभाज्य दुष्ट विधिनैतेभ्यः स्वजन्मक्षणे
व्यर्थं जन्म कृतं त्वदीयचरणे नो नाधिकारो यदि ।
विश्वंधारिणि ! नूनमेष न विधेर्दोषः क्षमायास्तव
जाने कोऽपि वशंकरोति यदि त भ्राजिष्णुमंशुश्रियम् ॥

धरती से

(१)

हे धरती !
हम गोद में तेरी पैदा हुए, तेरे औरस बच्चे और,
लगातार तेरी ही गोद में खेल कर बड़े हुए —
पर कितने अभागे हैं हम —
तुझे अपनी कह कर नहीं पुकार सकते !
हे देवी ! यह देखो, विधि की विडम्बना !
जिन्होंने कभी तुम्हारे चरण नहीं छुए — तुम्हारी सोन्धी गन्ध
(मेघ के सम्पर्क से उठी हुई) जिन्होंने कभी सूंघी तक नहीं !!
माँ की तरह तुम्हारे चरण कभी नहीं चुचकारे —
वे तुम पर अधिकार किये बैठे है !!

(२)

हे माता ! क्या दुष्ट विधाता ने जन्म के समय से ही —
बांट कर तुझे उनके हिस्से में दे दिया था ?
तो हमारा जन्म ही क्यों किया उसने —
यदि तुम्हारे चरणों पर हमारा अधिकार ही नहीं रखना था !
विश्व धारण करने वाली, हे धरती !
वास्तव में विधाता का नहीं, यह तेरी ही सहनशीलता का दोष
है !!
यदि नहीं तो मैं तब जानूं —
यदि कोई भभकते सूरज को अपने अधिकार में ले ले !!!

(३)

त्वत्क्रोडस्खलितोऽहमम्ब ! तनयस्त्वामन्तरा रोदिमि
खिन्नाया विततं गतं युगशतं ते नचापि मामन्तरा ।
संयोगो भवितामब ! नूनमधुना पश्य प्रतीच्यां रवेः
स्वर्गीया भवतारिणी ह्यरुणिमा साशं समुज्जृम्भते ॥

(४)

मातर्वक्षसि तेऽत्र मूकजनता मर्मस्थलं मर्दितं
कर्यानां पशुनग्नताण्डवमभून्मौनं त्वया च स्थितम् ।
त्वद्गात्रेऽपि विवर्त्तितेऽस्य सकलस्यान्तोऽभविष्यत् सकृत्—
.निश्चिन्ता भव साम्प्रतं वहति ते वातोऽनुकूलोऽद्यतः ॥

(३)

हे माता !

मैं तेरी गोद से गिर कर, तेरे बिना रोता-बिलखता नहीं थकता !

और,

मुझसे बिछुड़ कर उदास हालत में तेरी भी सदियाँ बीत रही हैं !!

देवी ! अब मेरा और तेरा मिलन अवश्य होगा —

देख नहीं रही हो —

संसार का उद्धार करने वाली, वह सूरज की स्वर्गीय लाली —

उषा देवी – सम्पूर्ण आशाओं के साथ –

उत्तर दिशा से ही निकल पड़ी है !!!

(४)

ओ धरती, अरी माता !

तेरे सीने पर मूक जनता के मर्मस्थल रौन्दे जाते रहे,

मनुष्यों ने पशुओं की तरह लगातार नंगे नाच नाचे,

और तू चुपचाप बैठ कर सब कुछ देखती रही !

एक बार तेरे करवट भर ले देने से — इन सब कथाओं का

अन्त हो सकता था !!

अब तो तू निश्चिन्त हो जा —

आज से हवाओं का रुख तुम्हारे ही अनुकूल बह निकला है !!!

(३)

त्वत्क्रोडस्खलितोऽहमम्ब ! तनयस्त्वामन्तरा रोदिमि
खिन्नाया विततं गतं युगशतं ते नचापि मामन्तरा ।
संयोगो भविताम्ब ! नूनमधुना पश्य प्रतीच्यां रवेः
स्वर्गीया भवतारिणी ह्यरुणिमा साशं समुज्जृम्भते ॥

(४)

मातर्वक्षसि तेऽत्र मूकजनता मर्मस्थलं मर्दितं
कर्त्यानां पशुनग्नताण्डवमभून्मौनं त्वया च स्थितम् ।
त्वद्गात्रेऽपि विवर्त्तितेऽस्य सकलस्यान्तोऽभविष्यत् सकृत्—
निश्चिन्ता भव साम्प्रतं वहति ते वातोऽनुकूलोऽद्यतः ॥

(३)

हे माता !

मै तेरी गोद से गिर कर, तेरे बिना रोता-बिलखता नहीं थकता !

और,

मुझसे बिछड़ कर उदास हालत मे तेरी भी सदियाँ बीत रही हैं !!

देवी ! अब मेरा और तेरा मिलन अवश्य होगा —

देख नहीं रही हो —

ससार का उद्धार करने वाली, वह सूरज की स्वर्गीय लाली —

उषा देवी – सम्पूर्ण आशाओं के साथ –

उत्तर दिशा से ही निकल पड़ी है !!!

(४)

ओ धरती, अरी माता !

तेरे सीने पर मूक जनता के मर्मस्थल रौन्दे जाते रहे,

मनुष्यों ने पशुओं की तरह लगातार नंगे नाच नाचे,

और तू चुपचाप बैठ कर सब कुछ देखती रही !

एक बार तेरे करवट भर ले देने से — इन सब कथाओं का

अन्त हो सकता था !!

अब तो तू निश्चिन्त हो जा —

आज से हवाओं का रुख तुम्हारे ही अनुकूल बह निकला है !!!

मृत्युं प्रति

(१)

मृत्यो ! किं गहनान्धकार निलये प्रस्वापितं जीवनं
मत्वा माद्यसि जीवनं मम शशी तद् व्यापयं द्योतते ।
क्षीणो मा हस, सोऽपि चेद् धवलितो व्योम्नि स्खलन् लक्ष्यते-
पूर्वस्यामुदितो नवो दिनमणि र्मेऽयं स जीवाकृतिः ॥

(२)

उन्मेषान्मम चक्षुषोर्युगशतं लीनं त्वया युध्यतः
सोऽपि क्रम एति यास्यति च मेऽखण्डः परं साहसः ।
वात्यः काम्यतु गर्जतां घनघटा मृत्वन्धकारे गुरौ
नित्यं जीवनदीपकस्य तु शिखा तन्वी मम द्योतस्यते ॥

मृत्यु से

(१)

हे मृत्यु !
जीवन को गहरे अन्धकार की गुफा में सुला कर,
उन्माद हो उठा है, तुझ को ?
देख, मेरा जीवन चान्द बनकर आकाश में चमक उठा है !!
यह देख कर फिर हंस पड़ी तू – कि –
चान्द भी क्षीण हो कर और सफेद पड़ा हुआ, पश्चिम में –
लड़खड़ा कर गिर रहा है !!!
जीवन तीखा सूरज बन कर पूर्व दिशा में जगमगा कर
निकल आया है !

(२)

आंखों से पलकें उठी है जबसे —
सदियां बीत चुकी है तुझसे संघर्ष करते करते !
वह संघर्ष चालू है और चलता रहेगा —
साहस मेरा अखण्ड है !!
मृत्यु के गहरे अन्धकार में —
चाहे आन्धी और तूफान बहें, घन घटायें गर्जन किया करें,
मेरे जीवन के दीपक की हल्की सी लौ —
सदा ही जलती रहेगी ?!!

(३)

निःशङ्कन्तु तथागताङ्घ्रि कमले शारण्यमासेदुषं
मृत्यो ! धावसि किं प्रसारितमुखस्त्वं मन्मनःसङ्गिनम् ।
कण्ठः शुष्यति वेपते तनुलता येषान्तु तेऽन्ये जना
श्चेष्टाभिस्तव सोत्कलं प्रमुदिताः खेलन्ति ये ते वयम् ॥

(४)

भिक्षो ! हन्त, तथागतस्य प्रतिमाध्यातं वचो विस्मृतं
शान्तस्त्वं चलितो निमिल्य नयने भारः स मय्यर्पितः ।
निर्बाधं त्यज बन्धनं त्वमथवा गृह्णामि ते नाञ्चलं
स्मारं ते मधुराकृतिं तनुरियं मेऽर्हत्पदे स्थास्यति ॥

(३)

मेरे मनका वह अभिन्न साथी —
जिसने निःशंक होकर बुद्ध के चरणों में अन्तिम सहारा पाया था !
उस पर मुंह बा कर टूट पड़ी तू !!
तुम्हारी चेष्टाओं के प्रकट होने पर आतंक से —
जिनका गला सूख जाता है, शरीर की वेल कांपने लगती है,
वे और ही होंगे !!
हम वे है जो उत्कण्ठा के साथ उसी अवसर पर —
सानन्द खेला करते है !!!

(४)

अरे, ओ—भिक्षु ! खेद है मुझे तुझ पर —
भगवान् बुद्ध के चरणों में खड़े होकर किये वादों को –
इतनी जल्दी भूल गये तुम !
चुपचाप आंखें मीच कर चल दिये और वह भार अकेले
मुझी पर फेंक दिया !!
अथवा, निर्बाध होकर बन्धनों से मुक्ति पाओ,
तुम्हारा पल्ला नहीं पकड़ता !!!
तुम्हारी मधुर आकृति सदा ही याद रहेगी और —
मेरी आत्मा तथा शरीर बुद्ध के चरणों में बने रहेंगे !

(३)

निःशङ्कन्तु तथागताङ्घ्रि कमले शारण्यमासेदुषं
मृत्यो ! धावसि किं प्रसारितमुखस्त्व मन्मनःसङ्गिनम् ।
कण्ठः शुष्यति वेपते तनुलता येषान्तु तेऽन्ये जना
श्चेष्टाभिस्तव सोत्कलं प्रमुदिताः खेलन्ति ये ते वयम् ॥

(४)

भिक्षो ! हन्त, तथागतस्य प्रतिमाध्यातं वचो विस्मृतं
शान्तस्त्वं चलितो निमिल्य नयने भारः स मय्यर्पितः ।
निर्बाधं त्यज बन्धनं त्वमथवा गृह्णामि ते नाञ्चलं
स्मारं ते मधुराकृतिं तनुरियं मेऽर्हत्पदे स्थास्यति ॥

(३)

मेरे मनका वह अभिन्न साथी —

जिसने निःशंक होकर बुद्ध के चरणों में अन्तिम सहारा पाया था !

उस पर मुंह बा कर टूट पड़ी तू !!

तुम्हारी चेष्टाओं के प्रकट होने पर आतंक से —

जिनका गला सूख जाता है, शरीर की बेल कांपने लगती है,

वे और ही होंगे !!

हम वे है जो उत्कण्ठा के साथ उसी अवसर पर —

सानन्द खेला करते है !!!

(४)

अरे, ओ—भिक्षु ! खेद है मुझे तुझ पर —

भगवान् बुद्ध के चरणों में खड़े होकर किये वादों को –

इतनी जल्दी भूल गये तुम !

चुपचाप आंखें मीच कर चल दिये और वह भार अकेले

मुझी पर फेंक दिया !!

अथवा, निर्बाध होकर बन्धनों से मुक्ति पाओ,

तुम्हारा पल्ला नहीं पकड़ता !!!

तुम्हारी मधुर आकृति सदा ही याद रहेगी और —

मेरी आत्मा तथा शरीर बुद्ध के चरणों में बने रहेंगे !

(३)

अन्योन्येन वसन्त कोकिल समासंगं वियोज्यावयो
रात्मानं बहुमन्यसे ऽ करुण ! किं ध्वसैकनित्तेक्षण ।
वाम: स्थास्यति काम कर्मणि करस्तस्यावशेषेऽद्यतो
मेऽन्यो रोत्स्यति रुन्धनं भवगने लोकप्रसारं तव ॥

(६)

हम बसन्त और कोकिल की तरह एक दूसरे के साथ मिले थे —

हे मौत ! एक दूसरे से अलग करके हमें — अपने आपको बहुत बड़ा

मान लिया तुमने !

हे अकरुण ! केवल विध्वंस में गड़ी आँखों वाली हे मौत !

क्या हुआ — जो मै अकेला रह गया —

यह बाँया हाथ उस काम में लगा रहेगा जिसे मित्र अधूरा छोड़

गये है —

और दाँया हाथ —

ससार की गति और विस्तार में बाधा बने तुम्हारे बान्ध को

दूर करता रहेगा, !!!

ममतां प्रति

(१)

त्वं लीलया वासु ! विभाव्यसे चेद्
दृष्टा प्रयत्नान्न विभाव्यसे किम् ।
क्रीडावितानैस्तव दीयते मे
चेतःस्वरूपं कथयाशु कासि ?

(२)

किं मे स्वरूपं परिपृच्छसि त्व
मामन्तरा शून्यमिदं न भाति ।
दूरस्थ वीणा सुविशीर्ण तारे-
ष्वेकस्वनादं परिपूरयामि ॥

ममता से

(१)

हे बाले !

तुम जब चाहती हो अठखेलियां करती करती —

यों ही दीख जाया करती हो !

मैं जब चाहता हूँ — प्रयत्न करके भी —

क्यों तुम्हें नहीं देख पाता ?

तुम खेल खेला करती हो और मेरा हृदय टूटा करता है !!

यह तो कहो, तुम्हारे हृदय का रूप क्या है ?

(२)

मेरा रूप पूछ कर क्या करोगे !

मेरे बिना सूना है सब कुछ ! कुछ भी अच्छा नहीं लगता !!

दूर दूर रक्खी वीणाओं के —

तार तार कर बिखरे तारों में,

मैं ही एकता की गूंज भरा करती हूँ !!

(३)

आस्ताँ, प्रिये ! हास्य विलास एष
भ्रूभंगिमास्तां मयि शान्त चित्ते ।
प्राणे कथं शुष्क तरौ विना मां
स्थायी भवेत्ते रस सन्धि बन्धः ॥

(४)

सूत्रं विना तां, ममते ! त्रिलोकीं
मथ्नासि तत्ते चरितं विचित्रम् ।
अस्त्येव चादर्शजनाद् भियेव
नो दृश्य तामेति ममत्व सूत्रम् ।

(३)

हे प्रिये,

तेरी यह आंख-मिचौनी और यह खिलवाड़ —

ये तनी हुई भौंहे और छेड़ छाड़ रहने भी दो —

मैं शान्त चित्त हूँ और बचा रहना चाहता हूं !

अरे मेरे बिना —

तेरे सूखे जीवन वृक्ष के जोड़ों में —

रस की सन्धियों का बन्धन, वह टिकाऊ पन —

कौन भरेगा और अन्धड़ों में टूटने से कौन रोकेगा !!

(४)

हे ममता !

तू गूंथने वाली बहुत निराली देखी —

सूत के बिना ही ये तीनों लोक एक दूसरे में गूंथ डाले तुमने !

नहीं, नहीं, सूत तो है ही —

पर इन आदर्शवादियों के भय से —

वह सूत छिपा रहता है, नहीं दीखता !!

(५)

तवाभविस्यद्यदि नावतारो
लोकोऽ भविष्यत्किमु शून्यसारः ।
साफल्य चिन्ताऽशरणैव कस्मात्
स्वर्गीय वर्गेषु कियान् प्रमोदः ।

(५)

री, ओ अभागी, ममता !

यदि तू संसार में कदम ना धरती —

तो क्या यह सूना रह जाता !

तुम मेरी उपयोगिता के सम्बन्ध में निरर्थक चिन्तित रहते हो !!

जो स्वर्ग और मोक्ष कहे जाते हैं — वहां धरा ही क्या है !!!

सेवा ग्रामस्य सन्तं प्रति

(१)

स्वपिति प्रिय ! समाधावत्र सोयं तपस्वी
तव नियति विधाने जीवने यो न सुप्तः ।
प्रहरिरिव न खिन्नोऽबोधयत् सुप्तराष्ट्रं
भवतिमिर निहन्ताऽ वारयत्तेऽ पमानम् ।।

(२)

वहति शिरसि नावं यो नदीं नावतीर्णः
शयनमपि निशान्ते संयमंगोपदेशी ।
वणिगपि न हि यो व्यापारयामास लक्ष्यं
सकल मनुजवन्द्यो धन्य आसीत्स गान्धी ।।

सेवा ग्रामस्य सन्तं प्रति

(१)

स्वपिति प्रिय ! समाधावत्र सोयं तपस्वी

तव नियति विधाने जीवने यो न सुप्तः ।

प्रहरिरिव रिवन्नोऽबोधयत् सुप्तराष्ट्रं

भवतिमिर निहन्ताऽ वारयत्तेऽ पमानम् ॥

(२)

वहति शिरसि नावं यो नदीं नावतीर्णः

शयनमपि निशान्ते संघभंगोपदेशी ।

वणिगपि न हि यो व्यापारयामास लक्ष्यं

सकल मनुजवन्द्यो धन्य आसीत्स गान्धी ॥

(१)

हे मित्र ! यहां समाधि में वह तपस्वी सोया है —
तुम्हारे भाग्य के निर्माण में लगा जो जीवन काल में नहीं सोया !
उसने सन्तरी की तरह सोया देश जगाया था और —
कभी थका न था !!
आतंक का अन्धेरा दूर करके —
उसने तुम्हारा अपमान धोया था !!!

(२)

संघ (कांग्रेस) के भंग का वह प्रचारक कौन था — जानते हो ?
जो नदी पार करके सिर पर नाव
नहीं रखता था और,
रात में सुख की नींद सो कर प्रात:काल सिर
पर खाट नहीं ढोता था ?
जानते हो वह कौन था जो बनिया (व्यापारी) हो कर भी
ापने उद्देश्यों का व्यापार नहीं करता था ?
वह धन्य पुरुष गान्धी था जिसे पूरी मनुष्य
ाति नमस्कार करती है !

(३)

युधि परदलहन्ता हा ! हतः स स्वकीयै

रजयदिह स हिंसां हिंसयान्ते हतोऽसौ ।

स्मृतिरपि दुरितानां मानसं नो निहन्ति

जितमपि यदि गात्रं तद् विचारास्त्वजेयाः ॥

(४)

उपवनमपि दृष्टं यद् दहेन्मालिनं किं

क्षिपति वत ! किमङ्के पुत्रकोऽग्निं जनन्याः ।

अगणितमुपकर्त्रेऽस्माभिरेवं कृतं किं

कथय कथमिवास्यं नो भवेन्निष्कलंकम् ॥

(३)

अफसोस है कि :—

जिसने युद्ध में शत्रुओं की सेना पछाड़ी वह अपनों ही

के हाथों मारा गया !

उसने हिंसा पर विजय प्राप्त की परन्तु अन्त में हिंसा ने ही

उसके प्राण लिये !!

जब हमें अपने पापों की याद भर हो आती है —

हृदय टूटने लगता है !!!

उसका शरीर जीता गया पर उसके विचार अजेय हे !

(४)

क्या देखा है, ऐसा उपवन :—

जो अपने माली को फूंकता हो !

क्या बच्चा अपनी मां की गोद में अंगारे धरता है !!

जिसने अनन्त उपकार किये हमारे साथ :—

हमने उसके साथ क्या किया !!!

कहो, हमारे चेहरे का कलंक कैसे धुल सकता है ?

(३)

युधि परदलहन्ता हा ! हतः स स्वकीयै

रजयदिह स हिंसां हिंसयान्ते हतोऽसौ।

स्मृतिरपि दुरितानां मानसं नो निहन्ति

।जतमपि यदि गात्रं तद् विचारास्त्वजेयाः ॥

(४)

उपवनमपि दृष्टं यद् दहेन्मालिनं किं

क्षिपति वत ! किमङ्के पुत्रकोऽग्निं जनन्याः ।

अगणितमुपकर्त्रेऽस्माभिरेवं कृतं किं

कथय कथमिवास्यं नो भवेन्निष्कलंकम् ॥

(३)

अफसोस है कि :—

जिसने युद्ध में शत्रुओं की सेना पछाड़ी वह अपनों ही
के हाथों मारा गया !

उसने हिंसा पर विजय प्राप्त की परन्तु अन्त में हिंसा ने ही
उसके प्राण लिये !!

जब हमें अपने पापों की याद भर हो आती है —
हृदय टूटने लगता है !!!

उसका शरीर जीता गया पर उसके विचार अजेय हैं !

(४)

क्या देखा है, ऐसा उपवन :—

जो अपने माली को फूंकता हो !

क्या बच्चा अपनी मां की गोद में अंगारे धरता है !!

जिसने अनन्त उपकार किये हमारे साथ :—

हमने उसके साथ क्या किया !!!

कहो, हमारे चेहरे का कलंक कैसे धुल सकता है ?

(५)

प्रणमति नत शीर्षं त्वत्पदे नो यदापि
स्मृतिरुदयति पापानां मुखं स्त्रियतेऽस्तम् ।
यतिवर ! दुरितानि त्वं छिदो नः क्षमस्व
सहवसतिरहोऽसौ यद् गुरूणां क्षमाणाम् ।

(६)

तुमुल समर आसीद् राजनीतौ च धर्मे
श्रुतमपि न च युद्धाऽहिंसयोरेकगेहम्
वसतिरपि न दृष्टा राज्यसंन्याসनिष्ठा
प्रथितमिद मिहासीत् सर्वमेकेऽपि तेन ।

(५)

हमारा झुका सर ज्यों ही :—

तुम्हारे चरणों में अभिवादन करता है —

हमे पापो की याद हो आती है और

मुख फीका पड़ कर पसीज जाता है !

हे यति श्रेष्ठ ! हमारे पापों को अपने चित्त से

उतार दो !!

बडे लोगों का और क्षमा का सदा ही सहवास

होता है !!!

(६)

राजनीति और धर्म में कितना भयंकर युद्ध मचता

रहा है ?

युद्ध और अहिंसा का भी एक घर कभी नहीं

सुना गया !!

राज्य और सन्यास कभी इकट्ठे रहते

नहीं देखे गये !!!

परन्तु देखो, उस व्यक्ति ने —

इन सभी को एक सूत में पिरो दिया था !

सरस्वती प्रार्थना

(१)

मातः सरस्वति ! यदा सुत वत्सलासि
तन्नो सतां रुचिकरस्तव पक्षपातः ।
वल्मीकभूः स प्रथमो विहितः कवीनां
कल्याणि ! कातर शिशौ मयि निर्दयासि ।

(२)

दीने शिशौ स्वकरुणा कुसुमैकपात्रे
किं शिक्षिता कठिनता जननि ! त्वयापि !
एक क्षणोऽपि न हि सह्यतरो विलम्बः
स्वांकं निधेहि करुणामयि ! कातरोऽस्मि ।

(१)

हे माता, हे सरस्वति !
यदि वास्तव में तुझे बच्चे प्यारे हैं,
एक के साथ पक्षपात करना तुम्हें शोभा नहीं देता !
उस बाल्मीकी को कवियों में पहला कवि, आदि कवि बना
दिया —
और हे कल्याणि ! इस अभागे शिशु पर इतना कड़ा
जी कर लिया है ! !

(२)

यह दीन बच्चा तुम्हारी करुणा के पुष्प का सर्वथा
अधिकारी है,
हे माता ! इसके लिये तूने भी कठोरता सीख ली !
अब एक क्षण का बिलम्ब भी असह्य हो उठा है !!
हे करुणामयि ! अपनी गोद में शरण दो, अधीर हो
उठा हूँ !!!

(३)

मात निर्जैन तु जनेन तिरस्कृतोऽहं
बद्धाञ्जलिस्तव पदं शरणं प्रपेदे।
प्राप्ता दया यदि तवापि न वंचितेन
कथा भवेद् वत ! प्रताडित जीवने मे।

(४)

त्यक्त्वा न यामि तव पाद मुपेक्षितोऽपि
तेषां शरण्यममृतोऽर्मिं गतो न यामि।
तेषां दयापि हृदयं दहति क्षुरघ्रा
रोषोऽपि ते जननि ! सह्यतरोऽन्तरेण।

(३)

हे माता !

मेरे अपने लोगों ने मेरी उपेक्षा की है और तिरस्कार दिया है !

हाथ जोड़ कर, असहाय हालत मे, तुम्हारे चरणों का सहारा पकड़ा है मैंने !!

यह वंचित शिशु यदि तुम्हारी भी दया न पा सका —

इसके प्रताडित जीवन में कौन सी आशा झलक सकती है !!!

(४)

बार बार ठुकराया जा कर भी —

तुम्हारे चरणों का सहारा छोड़ कर कहीं नहीं जाऊंगा !

और अमृत की लहरों में गोते खा खा कर भी —

उनकी शरण नहीं पकड़ूंगा !!

उनकी दया भी छुरे के समान जलाती है,

और हे माता !

तुम्हारा क्षणिक गुस्सा भी हृदय को भाता है !!!

(५)

किं निर्दये ! तनय वत्सलतापि मातुः
स्वाभाविकी कृतपदा त्वयि नास्ति मातः ।
बालस्य मातृचरणं शरणं गरिष्ठं
त्वं वेत्सि चेत् क्षिपसि किं हतचेतसं माम् ।

(६)

त्यक्त्वा गताऽम्ब ! जननी जननान्त एव
क्षिप्तोऽस्मि केवलकृतो जगदूर्मिजाले ।
तेनापि मे धृतिरसौ निहता न किन्तु
पक्षैर्विना तव खगोऽस्मि दयान्तरेण ।

(५)

अरी, बेरहम !

बच्चे के प्रति माता का स्वाभाविक प्यार तक तुझमें नहीं

रहा !

सभी कहते हैं — माता के चरण सबसे विश्वस्त

सहारा हैं शिशु के लिये !!

और तू इसे जानती भी है —

फिर भी मुझ अभागे को दूर फेंक रही है !!!

(६)

वह माता तो जन्म देकर ही चल बसी थी,

अकेला करके लोगों ने — संसार की लहरों के जंजाल में —

डूबने — तरने के लिये मुझे फेंक दिया था !

इससे भी मेरा कठोर धीरज टूटा नहीं था —

परन्तु —

तेरी दया के न पा सकने पर, मैं बिना पंखों का एक

पक्षी हूँ

कोकिलं प्रति

(१)

आस्तां कोकिल ! दारुणैः कलकलै रेतैर्मनो दीर्यति
म्लानं यन्न कठोर काक विरुतै र्वज्रप्रपातैरपि ।
आघात स्तव वाद्भुतः प्रियसखे ! कर्णे सुधा सिंचति
सन्तापं हृदि दारुणं प्रियजनं दूरस्थमाबोधयन् ॥

(२)

मासा नैव दिनानि, तैरपि च किं यात्येष संवत्सरो
हृद्वीणा स्वर कम्पन व्यसनि ते तद्गीतकं प्रेक्षतः ।
मानोत्साहच्चिदस्तु जम्बुकरुदां हाहारवव्याकुले
मूकस्यात्र सखे ! दिनानि कतमेऽरण्ये व्यतीतानि ते ॥

कोकिल से

(१)

हे कोकिल ! अपना यह रोना-धोना, यह कठोर आर्तनाद —
बन्द करो अब, मन फटा जाता है इससे — जो,
वज्रों के गिरने से और कौवे की कठोर टाँय-टाँय से मुरझाता
तक नहीं !

अथवा, हे मित्र ! अद्भुत है तुम्हारा आघात —
जो कान में अमृत सींचता है और —
दूर बैठे प्रिय जन की स्मृति जगा जगा कर हृदय में —
दारुण सन्ताप खड़ा करता है !!

(२)

कितने दिन और-महीने ही क्या — पूरा साल बीत रहा है —
हृदय की वीणा के स्वरों में कम्पन पैदा करने के व्यसनी,
तुम्हारे गीत की प्रतीक्षा करते — करते !
हे मित्र !

गीदड़ों की हुवां हुवां और हाहाकार से भरे उस जंगल में —
अपना हृदय और उत्साह तोड़ — तोड़ कर —
और चुप — चाप, गूंगा बन कर,
इतने दिन कैसे बिताये तुमने !!

(३)

आस्तां ते कलकण्ठ ! कण्ठविरुतैरत्यन्तखेदैरलं
ग्रामेऽस्मिन् करट ध्वनि व्यसनिनि त्वामत्र कः पृच्छति ।
शक्तश्चेदसि मा निरर्थक गिरं मर्माहतां तैर्मिलन्
नो चेज्जोषमिवास्य यापय वयः शाखासु लीनो वयः ।

(४)

कान्तारे शिशिरेष्वनावृतवपुर्गात्रामरण्यश्रियं
कामं दर्शयितुं समाह्वयसि किं कोलाहलैर्बान्धवम् ।
लज्जानम्रमुखीव सा कलकलं श्रुत्वेव वाचाल ! ते
सन्धत्ते शनकैः सुपल्लवचलल्लीलाम्बरैः स्वां तनुम् ।

(३)

अरे कोकिल !

रहने भी दो यह मधुर संगीत, क्यों अधिक परेशान होते हो,

इस गाँव के लोग कौवे की टाँय टाँय को ही-संगीत समझते हैं —

तुम्हें कौन पूछता है यहाँ !

यदि सम्भव हो तुमसे और वश का हो तुम्हारे —

इनके स्वर में स्वर मिला कर —

एक मर्मघाती और अर्थहीन गाना गाओ !!

यदि सम्भव न हो तुम्हारे लिये तो हे पक्षी !

चुप-चाप बैठ कर और शाखाओं में दुबक कर, जीवन

बिता दो !!!

(४)

इस जंगल में, इस भयंकर पतझड़ में, जंगल की देवी नंगी खड़ी है !

अभागे ! अपने मित्र कामदेव को दिखाने के लिये ही क्या

हल्ला मचा रहे हो !

अरे मुंफट, देख नहीं रहे हो,

तेरा कोलाहल सुनकर उसने लज्जा से मुंह झुका लिया है —

और, नई नई कोंपलों तथा पत्तियों के नीले हिलते वस्त्रों

से —

उसने धीरे धीरे शरीर ढकना शुरू कर दिया है !!

(५)

आहारः कलितस्त्वयाऽऽयुषि नवे कृष्णाङ्गनानां मुखात्
क्रीडद्भिश्च कृतघ्न ! काकशिशुभिर्बाल्यं वयो यापितम् ।
तानेवाद्य कथं रसालविटपे शाखां समारुह्य च
कुर्वन् हं पयसि द्रवन्मधुमधु स्वालाप मन्त्रध्वनिम् ॥

(६)

आरामं मधुशीतमन्दपवनं व्योमापि खेलास्थलं
रासालद्रुमवेदिका मधुरसास्वादश्च हस्ताद् गतः ।
यद्दोषादिव बन्धनं वितनुते ते निर्दयोऽयं विधिः
भ्रातः ! पञ्चम रागमञ्चसि सखे ! नाद्यापि तं मुञ्चसि ॥

(५)

अरे कृतघ्न, पक्षी !

कौवों की गृह लक्ष्मियों ने मुंह का आहार देकर तुझे बचपन में पाला था और —

कौवों के नन्हे शिशुओं के साथ खेल – खेल कर तेरा शैशव बीता था !

और आज आम के पेड़ की टहनी पर पलोथी मारे —

मधु की तरह मधुर संगीत गा गा कर —

तुम उन्हीं को बार बार शर्मिन्दा कर रहे हो !!

(६)

ओ, कोकिल !

प्राण फरफराने वाला वह मीठा शीतल और मन्द पवन कहां गया और कहां है —

वह आकाश जहां तुम कुलांच भरा करते थे और खेलते थे !

पता भी है तुम्हें कि —

क्रूर विधाता ने किस अपराध में तुम्हें पिंजरे का बन्दी बनाया है !!

अरे भाई, हे मित्र ! इस मनहूस पांचवें राग का अभी तक आलाप करते हो, अब भी उसे नहीं छोड़ते !!!

(७)

त्यक्त्वाऽनन्त विहारमाम्रकलिकासङ्गं स्फुरज्जीवनं
कस्मात्पञ्जरबन्धने निपतितो मित्र ! क्षणं चिन्तय ।
राज्येऽस्मिन् मधुगीतकं जनहितं लोकप्रियं गायतः
कारागारमुपायनं तदथवाऽयःशृङ्खला – बन्धनम् ॥

(८)

तन्नीलाम्बरमम्बरे जलधरो घोषो मृदङ्गध्वनिः
आस्तीर्णं हरितञ्च शस्यवसनं सज्जः शिखी नर्त्तकः ।
सन्नद्धेह सभा स्थितं किमु सखे ! मौनं त्वयैवाथवा
मौनं योग्यमिहास्ति कर्णकटवो भेकाः सभा-गायकाः ॥

(७)

ओ कोकिल, सखे !

गाने से पहले रुको और जरा सोचो —

क्यों मिला है तुम्हें पिंजरे का यह बन्दी जीवन जिससे —

अनन्त आकाश की वह उछल - कूद और विनोद गया,

आम के मौर का फुदकता साथ गया और चहचहाते

स्वाधीन जीवन की घड़ियां हाथ से गईं —

इस राज्य में जो जन हितकारी और मीठा गीत गाते हैं,

उन्हें दो ही उपहार मिलते हैं —

या तो कठोर कारागार और या लोहे की शृंखलाओं का बन्धन !!

(८)

हे मित्र !

आकाश में नीला बादल तम्बू के समान तना खड़ा है,

घन गर्जन मृदंग की तरह गूंज रहा है,

हरी-हरी दूब दूर-दूर तक गलीचे के समान बिछी है, और —

नर्त्तकराज मयूर नाचने की पूर्ण तैयारियों में हैं,

सभा पूरी तरह जमी बैठी है और तुम मौन हो !

अथवा इस महफ़िल में —

तुम्हारा चुप रहना ही भला है !!

कान फोड़ते मेंढक ही इस सभा के गवैय्ये हैं !!!

(९)

ध्वांक्षोलूक वराह फेरुगहनेऽरण्ये स्थितिं कुर्वता
कुत्रापाठि सखे ! प्रकाम मधुरः स्फीतश्च गीतध्वनिः ।
सर्वोऽप्यात्मगुणानुरूप गुण मादत्ते समस्थोऽपि हि
एकोद्यानभुवौ पृथग्रसमयौ निम्बेक्षुकाण्डौ यथा ॥

(१०)

नग्ना तिष्ठति कानने वनलता सोऽद्यापि रूक्षो मरुत्
शुष्कं पर्णमयाधरं वनभुवो गुञ्जन्ति नो चालयः ।
लक्ष्मीं कां परिभाव्य मित्र ! शिशिरे स्फीतं कलं गायसि
कालाकालमपीक्ष्यते न हि यया किं वा तया विद्यया ॥

(९)

तुम्हारा जीवन बीता उस जंगल में — जहाँ -
कौवे, उल्लू, सूअर और सियार भरे पड़े हैं, और —
हे मित्र !
यह मीठा संगीत और संस्कृत वाणी कहाँ पढ़ ली तुमने !
एक जैसे स्थान पर रह कर भी —
सभी अपने गुण के अनुकूल गुण ले लेते है !!
एक ही उद्यान मे पैदा हो कर —
नीम कितना कड़वा हो गया और गन्ना अमृत बन गया !!!

(१०)

अरे मूर्ख, और बकवादी !
देख नहीं रहे हो कि जंगल में बन लता आज भी नंगी खड़ी है,
हवा का रूखापन ज्यों का त्यों बना हुआ है,
वन भूमि के ओठ का पत्ता अभी तक सूखा पड़ा है और,
भौरों ने अभी तक गूंजना प्रारम्भ नही किया है !
इस पतझड़ में कौन सा सौन्दर्य देखा तुमने, जिससे चहक उठे हो ?
उस कम्बख्त विद्या का भी क्या करें जो समय और असमय
की पहचान तक नहीं कर सकती !!!

भारत भूमिं नमामि

(१)

ऋग्वेदस्य प्रथममनुजैर्यत्र गीतं प्रगीतं
दग्ध्वारण्यं प्रथमवसतिर्यत्र मर्त्यैरकारि ।
अत्रैवासीत्प्रथम विहितो ऽसौ श्रमाणां विभागः
सर्वश्लाघ्यां भरत जननीं भूमिमेनां नमामि ॥

(२)

अङ्के यस्याः प्रथम कविना श्राविता रामगाथा
ज्ञानागारं स विरचितवान् व्यासदेवो महर्षिः ।
भ्रान्तारण्ये प्रियविरहिणी यत्र सा कण्वकन्या
सन्देशार्थे रमणवसतिं यत्र मेघ श्चचाल ॥

भारत भूमि को नमस्कार

(१)

जहाँ ऋग्वेद के गीत गाये थे — संसार के सबसे पहले मनुष्यों ने,
जहाँ जंगल फूंक कर सबसे पहली बसतियां आबाद हुई थीं,
वर्ण व्यवस्था के रूप में जहाँ सबसे पहले श्रम विभाजन
किया गया था,
मैं भरत की माता इस भूमि को —
जिसकी सभी प्रसंशा करते हैं — नमस्कार करता हूँ !

(२)

आदि कवि ने जिस की गोद में बैठकर —
राम की गाथा सुनाई थी और,
महर्षि वेद व्यास ने ज्ञान के भण्डार, महाभारत का निर्माण किया
था !
जिसके वियाबान जंगलों में कण्व मुनि की कन्या —
शकुन्तला विरह में व्याकुल घूमी थी, और —
जहाँ का बादल विरही यक्ष का सन्देश लेकर,
विरहिणी के पास चल दिया था !!

(३)

अत्रैवासौ शमन शिशिरा बुद्धगीता च गीता
यत्राक्रीडद् भुवनविजयी शान्तिशस्त्रैरशोकः ।
मान्यो रामादपि बलवतो यत्र लोकप्रवादः
ध्वंसे व्यग्रां नवपथकृते कौरवाणां नमामि ॥

(४)

आक्रान्ता या क्षणमपि नता नैव पापैः कदाचित्
आङ्ग्लैर्यस्याश्चलति समरो हन्त ! पुण्याघकल्पः ।
गर्वो यस्या गुरुरिव सखे ! दुर्गचित्तौड़ दुर्गः
शुभ्रज्योत्स्नो ननु विजयते मातृभाजः स ताजः ॥

(३)

यही तो वह भूमि है जहाँ,

शान्ति से शीतल बुद्ध गीता गाई गई थी —

शान्ति के शस्त्रों से विश्व विजय करने वाले अशोक की,

क्रीडा भूमि भी तो यही थी —

राम बहुत बलवान थे, परन्तु जनमत यहाँ राम से अधिक

बलवान था —

न्याय और मर्यादा की रक्षा के लिये,

कौरवों के ध्वंस में उतावली — भारत भूमि को प्रणाम करता हूँ !!

(४)

दुष्टों ने आक्रमण किये बार बार उस पर —

क्षण भर के लिये भी जिसने सिर नहीं झुकाया, आत्म समर्पण नहीं

किया,

पाप और पुण्य के बीच चलते घोर युद्ध की भांति —

अंग्रेजों से उसका कठोर संघर्ष चल ही रहा है !

हे मित्र !

चित्तौड़ का दुर्गम किला माताके भारी गर्व के समान है !

और,

चान्दनी के समान चमकीला ताजमहल उसके उज्ज्वल

माथेके समान है !!

[उल्लास]

(५)

आत्मानं ते जननि ! तनयं साभिमानोऽस्मि वीक्ष्य
संयोगान्विग्रह हत मना दुर्दशाभिर्न खिन्नः ।
श्लाघ्यं भूतं कविकुल गुरुं कालिदासं स्मरामि
दीप्तो भावी रमति नयने वर्त्तमानस्य सीमा ॥

(६)

मातः ! खिन्नं भवतु न मनो व्यर्थचिन्ताभिराभि
र्गाथां लोकः पुनरपि यशोवर्स्मगां श्रोष्यतीति ।
लोकाचारस्तव सुतकृतश्चेद् जनग्राह्य आसीत्
साशां मुक्तिं कलयति जगच्छान्ति सन्देशवाहाम् ॥

वाराणसी धाम [पचास] नवम्बर १९३७

(५)

हे माता !

जब देखता हूँ कि मैं तुम्हारी ही सन्तान हूं —

अभिमान और गौरव में फूला नहीं समाता !

संयोगवश बन्धनों में जकड़ा रह कर भी मैं खिन्न नहीं होता !

कविकुल गुरु कालीदास को,

मै प्रसंशनीय भूतकाल के रूप में याद करता हूँ, और —

वर्त्तमान की दुःखद सीमा के अन्त के रूप मे,

उज्वल भविष्य आँखों में चमकने लगता है !!

(६)

हे भारत भूमि, हे प्यारी माता !

इन व्यर्थ की चिन्ताओं मे अपने आपको मत घुलाओ,

यश की पग डण्डी पर चढ़ी तुम्हारी गाथा —

संसार को एक बार फिर सुननी ही होगी !!

तेरे पुत्रों का लोकाचार और परम्परायें —

यदि पहले लोगों के लिये अनुकरणीय थीं — तो,

यह पूरा विश्व, शान्ति का सन्देश लेकर लौटी —

तुम्हारी स्वतंत्रता की प्रतीक्षा — आशा और विश्वास के

साथ करता है !!!

लोनेनो जयांते

(१)

सकल मनुज चिन्तं वेत्सि यो नात्मचिन्तः
पतति च प्रतिबिम्बं कुत्र लोक व्यथानाम् ।
त्रिदिव वसति देवैः कोस्ति संघर्षखिन्नः
क्षितितलमवनेतुं नाव्ययं लेनिनः सः ॥

(२)

मनसि विचलितानां कश्च नः शत्रुघाते
कटुसमर रतानां प्राणसारं बिभर्ति ।
स्वपिति नियतिमूढोऽसौ स्वयं शोषितोऽपि
प्रहरिरिव तमीद्वेत् लेनिनो जागरूकः ॥

लेनिन की जय हो !

(१)

जानते हो उस व्यक्ति को —
जो सब की चिन्ता रखता था पर अपनी चिन्ता कभी न करता था !
पता है तुम्हें —
संसार की व्यथाओं का प्रतिबिम्ब कहां जा कर पड़ता है !
जानते हो उस महान् योद्धा को - जो,
स्वर्ग को धरती पर उतारने के लिये स्वर्ग के देवताओं से
घोर युद्ध करता था और कभी थकता न था —
वह व्यक्ति लेनिन था !!

(२)

जीवन - मरण के कठोर संघर्ष में जब लगे रहते हैं हम,
वर्ग शत्रु जब घातक प्रहार करता है हम पर, और —
हम विचलित हो जाते है, पांव लड़खड़ाने लगते हैं हमारे —
उस समय कौन चुपके से हमारे हृदय में प्राण फूंका
करता है !
अभागा शोषित जब भाग्यवाद में अन्धा हो कर,
चुप - चाप सो जाया करता है, उस समय —
चौकन्ने सन्तरी की भान्ति, लेनिन —
उसका पहरा दिया करते हैं !!

(३)

स तु हिमगिरि पारे पूर्व पौराणिकानां
वसतिषु च सुराणां लब्धजन्मोत्तरस्याम् ।
यदपि गरुड गामी विष्णु जात्यः स नासीत्
गरुड इव तु भाग्यं प्रेक्षते शोषितानाम् ॥

(४)

जठर दहन दग्धेभ्योऽन्नदो नान्नदोऽपि
स्वमिव गणयित्वाऽकारि दासा ह्यदासाः ।
हतमिति धनिकै यैः शोषितेभ्यो द्वितीयं
त्रिदिवमिव च विश्वामित्रकल्पश्चकार ॥

(३)

जहां हमारे पूरखे और पुराने देवता —
निवास किया करते थे, उस पवित्र उत्तर दिशा में,
हिमालयके उस पार
उसने जन्म लिया था !
यद्यपि गरुड़ की सवारी करने वाला,
वह विष्णु की जाति का नहीं था —
परन्तु गरुड़ की भांति ही
वह अभागे शोषितो का भाग्य देखा करता था !!

(४)

पेट की आग में जलते निर्धनों को,
उसने अन्न दिया था – पर देखो, अन्न दाता कभी नहीं बना !
दासों को अदास किया था उसने,
परन्तु स्वयं को मुक्तिदाता नहीं कहलाया !!
वह विश्वामित्र था – जिसने यह सोच कर कि —
धनियों ने स्वर्ग चुरा लिया हैं,
शोषितों के लिये धरती पर दूसरा स्वर्ग बनाया था !!!

(५)

अनुमत इव घाते नार्त्तनादोऽपि तेभ्यो
जलधिमपि खनित्वा त्व स्वयं तीरवासी ।
तृण सम गिरि भङ्गो रुद्धमार्गस्त्वमेत्वाऽ-
नयदिह परिलुप्तां मानवीं स प्रतिष्ठाम् ॥

(६)

शमन सुख नयान्ते ह्यागता बोधयन्तोऽ
व्यथयदिह महन्तं कन्तु मूर्त्तप्रयोगः ।
नम प्रिय ! नतमूर्ध्ना लेनिनं येन नीतं
सकलभवनिमूलं शान्तिसौख्योपदेशम् ॥

(५)

ओह !

वे मारा करते थे, पर रोने की अनुमति कभी नहीं देते थे !

तुमने समुद्र खोदे थे, पर तुम स्वयं सदा किनारे ही पड़े रहे !!

तिनकों की तरह पहाड़ तोड़े तुमने, पर रास्ते तुम्हारे ही

रुके रहे !!!

लेनिन ने मानव की खोई प्रतिष्ठा और मर्यादा की,

पुनः स्थापना की थी !

(६)

कितने महापुरुष आये थे यहाँ,

कितनों ने शान्ति, सुख और सुनीति के पाठ पढ़ाये थे —

पर किसे चिन्ता थी इसकी — उनके उपदेश व्यवहार में आते

हैं या नहीं !

हे मित्र !

सिर झुका कर लेनिन को प्रणाम करो,

जिसने शांति, सुख और सुनीति के तमाम उपदेशों को,

ठोस धरती पर टिकाया था !!

आषाढ मेघं प्रति

(१)

रे धाराधर ! धन्यपर्वतकुलं कृत्वा जलैः संकुलं
सम्पूर्य द्रुम जीव धान्य दलिनीं कूलंकषासन्ततिम् ।
किं गर्वोन्नतमस्तकेन भवता भ्रातः ! मुहुः स्फूर्ज्यते
सोऽयं रोदिति चातकः पुनरहो त्वय्येव यज्जीवनम् ॥

(२)

धारा वृष्टिमयी त्वमन्द करुणाऽप्यास्तां तवेयं सखे !
आस्तामभ्र ! विकाशिकाश कुसुमानन्दोऽपि संलापजः ।
संस्थानैरपि तेऽस्त्वल सह सखे ! तत्राप्यदो नोचितं
सोत्कण्ठो निजदर्शनेन भवता नाश्वास्यते चातकः ॥

आषाढ के मेघ से

(१)

धारा धारण करने वाले, हे मेघ !

सूखे पहाड़ों को सराबोर करके, धन्य बना कर,

वृक्षों, जीव-जन्तुओं और फसलों का विध्वंस करती एवं किनारे

ढाती नदियों में बाढ़ ला कर —

तुम गर्व से ऊंचा मस्तक किये बार बार क्या गरजते हो ? —

देखो, उस चातक की ओर, जो प्यासा बिलख-बिलख कर रो रहा

है — जिसका जीवन केवल तुम्हीं पर आश्रित है !!

(२)

मुसलाधार वर्षा की असीम करुणा यदि संभव नहीं है तो रहने दो,

हे मेघ !

फूले कांस से सफेद फूलों के समान हंस हंस कर इस अभागे से बातें

नहीं करते तो वह भी रहने दो !!

हे मित्र !

यदि इसके साथ उठने-बैठने को भी तैयार नहीं हो

तो उसकी भी टाल करो !!!

परन्तु यह कैसे मुनासिब कहा जा सकता है कि :—

चातक बे-सबरी से आंखें फाड़-फाड़ देख रहा है और तुम उसे

दर्शन तक देना नहीं चाहते !

(३)

कासारः सुनिहार हार धवलश्चेदस्ति तेनापि किं
चेतोहारि सुवारि निर्झर झरोऽप्यस्त्येव तेनापि किम् ।
सर्वस्वं भुवि पाथसां सलिलधिश्चेदस्ति तेनापि किं
तृष्णां कस्तु निराकरोतु विषमां तां त्वां विना चातकीम् ॥

(४)

कीलालादिव जीवनाद् विरहितः स्वोद्भङ्गलीलाकुलो
निष्पद्मो मधुपालिगुञ्जनरवैर्हीनो हृदानन्ददैः ।
निःशालुश्च नितान्त तान्त रविणा निःशेषमाशोषितो
लेखादीर्णमुखस्तु पश्यति मुहुस्त्वामेव बद्धाञ्जलिः ॥

(३)

हुआ करे कोई सरोवर जिसका पानी —

सुन्दर हिम और तरुणी के हार के समान सफेद हो, इससे क्या ?

हुआ करें छोटे और बड़े बहुत से झरने —

जो मन लुभा लेते हैं और जिनका पानी बहुत अच्छा है,

उनसे भी क्या ?

और सम्पूर्ण जलों का भण्डार यह समुद्र भी हुआ करे,

क्या होगा उससे ?

इस जिद्दी चातक पक्षी की —

कुटिल प्यास को तुम्हारे बिना कौन शांत करेगा ?

(४)

इस अभागे जोहड़ के सर्वनाश की लीला तो देखो —

पानी क्या सूख गया है, इसका जीवन ही समाप्त हो गया है !

इसके कमल नष्ट हो लिये और,

हृदय तरंगित करते भौंरे छोड़कर भाग गये और गूंजना बन्द

हो गया उसका !!

काई के निशान तक बाकी नहीं रहे और क्रोधी सूरज ने —

पाताल तक सुखा डाला है इसे !!!

दरारों के फटे मुख से वह —

गहरी आशा के साथ तुम्हारी ओर निहार रहा है !

(५)

धूं धूं दाहकरैः कठोर पवनैस्तैस्तैः समुद्वेजिता
सा प्रेतैरिव शुष्क पर्ण हरणैः वीत्यैश्च नग्नीकृता ।
तन्मार्त्तण्ड प्रचण्ड दीधितिशिखा व्याधूत गण्डस्थली
तप्तोच्छ्वासमुखी ककुम् नववधूः त्वामेव चोद्वीक्षते ॥

(६)

रे नीलोत्पल मंजुमेचकतनो ! जीमूत ! धाराधर !
त्वत्तुल्यो न सखे ! परार्थ घटको दृष्टः श्रुतो वा क्वचित् ।
सोऽयन्तेऽप्यविवेक एव हृदय— क्लेशाय सम्पद्यते
बन्धो ! तप्तधरासु दीर्घजलधौ तुल्यस्तवानुग्रहः ॥

(५)

इस बेहाल दिशा-वधूकी दुर्दशाकी ओर निहारो—

धूं धूं करके बहनी, जलती और तीखी लूओं ने उसे बेचैन

कर दिया है !

प्रेतों की तरह उड़ते हुलों ने—

उसके सूखे पत्तों का अपहरण करके नंगा बना दिया है !!

उस सूरज की तीखी किरणों की ज्वालाओं ने—

उसके सुन्दर कपोल झुलस डाले हैं और—

गरम आहों के सोमों से ऊपर मुंह उठाये— वह केवल तुम्हीं को

देख रही है !!!

(६)

अरे, नीले कमल के समान सुन्दर शरीर के,

जीवनदाता, धारा धारण करने वाले, हे मित्र !

दूसरों की भलाई करने में तत्पर तुम्हारे समान—

न कोई देखा है और न सुना है, दूसरा !!

तुम्हारा भी यह अविवेक ही केवल—

ृदय में असीम व्यथा भरता है—

अरे मित्र !

तप-तपाती धरती और जल के असीम भण्डार सागर पर

तुम्हारी कृपा समान रहती है !!!

(७)

नभ्रोऽहं प्रियमेचके वपुषि ते पश्यामि शुभ्रं मनः
सन्देशं परिगृह्य तां विरहिणीं त्वं यक्षिणीं प्रस्थितः ।
पृच्छामः किमु कालिदास विहितामेवार्थनां मन्यसे
कोटिश्चित्रपटे यदा विरहिणां त्वत्प्रेषणे मग्नधिः ॥

(७)

. झुकता हूँ, तेरे बड़प्पन के सम्मुख—

लुभावने और सांवले शरीर में तेरे, स्वच्छ मन निवास करता है !

भी तो—

दुःखी यक्ष पर दया करके विरहणी यक्षिणी के पास सन्देश

ले कर चल पड़े थे !!

बताओ तो जरा हे मेघ कि:—

क्या कालीदास की ही प्रार्थना स्वीकार किया करते हो—

जब कि :—

सिनेमा के ये करोड़ों विरही सन्देश देकर तुम्हें

भेजने में उतावले हैं !!!

दीप दानम्

(१)

निःस्नेहैः प्रतियोगिता न घटते तारागणैस्ते सखे !
मा मानिन्नतिसाहसं कुरु वृथा तन्वी तवेयं शिखा ।
एते ते मलिनाः कठोरहृदयाः स्वान्ते हसन्तस्तु ये
दृष्ट्वा व्याकुल चक्रवाक युगलं सुत्तापयन्ति क्षपाम् ॥

(२)

कुर्वन्त्यां मधुरं ध्वनिं कलकलं नद्यामनन्ते प्रियं
कं रेऽनन्तमयं सखे, सखिवरं स्वं वीक्षितुं प्रस्थितः ।
कोऽर्थः स्नेहमयैक जीवन ! मुधा भ्रान्तेन दिङ्मण्डलं
एकस्थः क्षिप धाम पश्य निवहं तत्रैव च प्रेमिणाम् ॥

दीप दान

(१)

हे अतिसाहसी और स्वाभिमानी, दीपक !

इन स्नेहहीन तारों के साथ तुम्हारी होड़ अच्छी नहीं !

तुम्हारे जीवन की यह लौ कितनी पतली सी और कमज़ोर है !!

ये मैले और कठोर हृदय के तारे—

आपस में बिछुड़ा चकवा–चकवी का जोड़ा जब रात भर बेचैन

रहता है— तो –

मन-मन में हंसते रहते हैं और यों ही रातें बिता देते हैं !!!

(२)

देखो, यह नदी मीठी कल कल ध्वनि करती बहती है,

और इस पर सवार हो कर हे मित्र—

अनन्त पथ का पथिक बन कर तुम—

अपने किस अनन्त मित्र की ढूंढ में बह निकले हो ?

अरे, स्नेह रूपी जीवन के, दीये !

दिशा–विदिशाओं और संसार का चक्कर काटने में—

क्या रखा है—

एक जगह बैठो, वहीं प्रकाश फेंको— और—

देखो कि वहीं कितने प्रेमियों का झुण्ड तुम्हारे पास जमा होता है !!

[सड़मठ]

(३)

एकाकिन् ! परिहाय रे त्रिभुवनं कस्यान्तिकं गम्यते
नद्या नैव बिभेषि, नान्धतिमिराद् दुःसाहसे मग्नधे !
इच्छामस्तव मंगलं, व्यथयति स्वान्तं तु चिन्ता त्वरां
मा जायेत कदाचिदेष पवनः सत्कीर्तिशेषाय ते ॥

(४)

किं वा यासि वियोगिनां प्रियजनै र्गाढान्धकारे पुन
र्मार्गं दर्शयितुं पराहिंरण ! क्लेशाभिनन्दिन् ! सखे !
धन्यं, कार्यमिदं तवोचितमपि, स्वार्थान्धनेत्रात्परं
विस्मृत्यापि जनान्न दास्यसि हृदि त्वं साधुवादस्पृहाम् ॥

(३)

अरे, अकेले !

तीनों लोकों को पीछे छोड़ कर किसके पास चले तुम ?

नदी से डर नहीं लगता !

अन्धेरे से भी नहीं, इतने गहरे दुःसाहस में डूबा है तू !!

हम तुम्हारी मंगल कामना करते हैं—

पर यह चिन्ता मन में व्यथा भरती है

कहीं क्षण भर के लिये हवा का वह झोंका न आ जाय—

और तुम्हारी अच्छी कीर्ति भर बाकी न रह जाय !!

(४)

दूसरों के दुखों में हाथ बंटाने वाले,

कष्टों का स्वागत करने वाले, हे मित्र दीये !

गाढ़े अन्धकार में बिछुड़े प्रेमियों को मिलाने के लिये,

और राह दिखाने के लिये तो कहीं नहीं चल पड़े तुम !!

धन्य हो तुम्हें,

यह काम तुम्हारे योग्य भी है,

परन्तु स्वार्थ से अन्धे लोगों से—

धन्यवाद और बधाई पाने की अभिलाषा को—

भूल कर भी अपने हृदय में स्थान मत देना !!!

(५)

हं हो, दारुण साहसैक शरणं लोकाः क्षणं पश्यतां
धृत्वा जीवनमेवमंजलिपुटे प्राणैः समं क्रीडति ।
एकाकी ह्यबलः स्वबुद्धिकलिका मात्रावलम्बोऽप्ययं
त्यक्त्वा क्वैति कुसाहसी त्रिभुवनं पृच्छन्तु मुग्धं मनाक् ॥

(५)

अरे, दुनिया के लोगो !

दारुण साहस के भण्डार इस दीपक को देखो,—

जीवन को इस प्रकार हथेली पर रखे—

यह प्राणों के साथ खेल खेल रहा है !

अकेला, कमज़ोर, अपनी बुद्धि की हल्की सी लौ का—

सहारा भर ले कर—

तीनों लोकों को पीछे छोड़ कर—

यह भोला चल कहाँ दिया है, ज़रा पूछो तो सही !!

दयानन्दं प्रति

(१)

यते, कश्चिद्रम्यामभिलषति वामामभिनवां
भवैश्वर्यं कश्चिन्नरपति समारूढ पदवीम् ।
विरक्तः कैवल्यं ह्यनुसरति कश्चिद् भवभिया
कवेस्त्वस्य स्वान्तं तव चरणचिह्नं मृगयते ॥

(२)

जगन्नाथो मुक्तो यतिवर ! खलो जीवनहरः
त्वया नो ताम्बूले विषदहनदः सोऽपि गणितः ।
गता ग्रावाघातानपि तव शुभाशीर्मधुगिरो
महामर्त्यानां ते सकलमनुरूपं समभवत् ॥

दयानन्द के प्रति

(१)

हममें कोई कोई अभिनव तरुणी का अभिलाषी है !
किसी की कामना संसार का ऐश्वर्य और राज्य पाने की है !!
ससार से डरे हुए कुछ विरक्त लोग —
मुक्ति के पीछे दौड़े फिरते है !!!
हे सन्यासी !
इस कवि का हृदय तुम्हारे चरण चिन्हों की ढूंढ में है !

(२)

हे यतिवर !
उस दुष्ट जगन्नाथ को क्षमा किया तुमने जिसने प्राण लिये थे !
पान में विष की आग देने वाला वह पापी भी तुम्हारी क्षमा का
पात्र बना था !!
पत्थरों की मार देने वालों को तुम्हारे शुभ आशीर्वाद मिले
थे !!!
महापुरुषों के योग्य सभी कुछ तुम में था !

(३)

अयं मर्त्यः शैल द्रुम पशु समार्चारतमति
रधोभ्रष्टः श्रेष्ठः सकलजनुषा क्रूरविधिना ।
मुने, रूटिध्वंसिन्, सकल जड पाखण्ड दलन
त्वया लुप्तं मानं हतविधिजनस्योद्धृतमहो ॥

(४)

अहम्मन्यः पूजामभिलषति कश्चित्स्म जनिना
हतम्मन्यः कश्चित्पतित जडधेरर्चनरतिः ।
कृता कर्मश्लाघा कृति जनिविवादे जडधियां
भवेत्कीटं दध्नः कमलसुरभिः पङ्कनिकरात् ॥

(३)

समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ, इस मानव प्राणी का —
कितना गंभीर पतन हुआ था !
पत्थरों, वृक्षों और पशुओं के सम्मुख सिर झुका कर —
यह उनकी पूजा करने में डूब चुका था !!
सम्पूर्ण पाखण्डों का दलन करने वाले,
रूढिवाद के विध्वंसक हे मुनि !
इस अभागे मानव की लुप्त मान – मर्यादा की —
तुमने पुनः स्थापना की थी !!!

(४)

कोई तो इतना अहंकारी और दम्भी बन गया था कि —
केवल जन्म के कारण ही दूसरों से पूजा की कामना रखता था !
कुछ इतने हीनभाव में दब गये थे— कि—
पतितों और मूर्खों की सेवा करने में संलग्न थे !!
जन्म और कर्म की तुलनात्मक श्रेष्ठता के—
मूर्खों के विवाद में तुमने कर्म को ही श्रेष्ठ बताया था !!!
दही से कीड़े पैदा हो जाते हैं और कीचड़ के ढेर से—
कमल की सुरभि !

(५)

स्थितो देवे ह्येके त्वमसि बहुदेवान् भुवि किरन्
विशीर्णाचारं न स्त्वमददिह सामाजिक तनुम् ।
अयं राष्ट्रोद्बोधी प्रगतिमतिरान्दोलनकरो
दयानन्दः स्वामी कठिनपथगामी विजयते ॥

(६)

इदानीन्त्वालिख्यं वदतु सकलश्चान्त्यजजनं
हषद्देवः सर्वैः सुकरपरिहासः प्रियसखे !
अहं वन्दे भूयः स्थिरमतिममुं येन गणिता
विरोधे नो रूढे हृदि तुमुलझंझाहतिरसौ ॥

[छियत्तर]

(५)

बहु देवतावाद को धरती पर बिछा कर,
तुमने एकदेवतावाद की स्थापना की थी !
हमारे व्यक्तिगत और बिखरे आचारों को—
तुमने सामाजिक रूप प्रदान किया था !!
सोये राष्ट्र में जागरण की लहर पैदा करके,
सदा भविष्य की ओर निगाह रखकर आन्दोलन करने वाले,
दयानन्द स्वामी—
कठिन मार्गों पर चले थे और विजय प्राप्त की थी उन्होंने !!!

(६)

अब तो जो चाहे अछूतों को गले लगाने की बात करे !
हे प्रिय मित्र !
पत्थर के देवता का भी चाहे जो मज़ाक बना सकता है !!
परन्तु मैं उस स्थिर बुद्धि के सन्यासी को —
बार-बार नमस्कार करता हूं,
जिसने रूढ़िवाद का सबसे पहले विरोध करते करते—
रूढ़िवाद के भयंकर अन्धड़ का आघात अपने सीने पर
झेला था और कतई परवाह नहीं की थी !!!

(७)

त्वयादिष्टं काले यतिवर ! कथाशेषमधुना

गृह्णन्ते रूढीनामनुचर जनः संकुचितधिः ।

परं शङ्क्यमानं प्रगतिनवजागर्तिषु मुने !

कृतज्ञो देशस्त्वां नमति वहुमानांचितमनाः ॥

लवपुरम् [घठत्तर] जन्माष्टमी १९३५

हे यतिवर —

अपने जीवन काल में लगातार जिसका प्रचार किया था तुमने,

उसकी अब कहानी भर शेष बची है !

संकीर्ण मनोवृत्ति के तुम्हारे अनुयायी—

रूढिवाद के अड्डे बने हुए है !!

हे मननशील व्यक्ति !

प्रगतिशीलता और नव जागरण के लिये—

तुमने जो शंख एक बार फूंका था— उसके आभार रूप में—

अत्यन्त सम्मान से भरे मन का और

चिरकृतज्ञ यह भारत देश तुम्हें नमस्कार करता है !!!

(७)

त्वयादिष्टं काले यतिवर ! कथाशेषमधुना
गृह्णन्ते रूढीनामनुचर जनः संकुचितधिः ।
परं शङ्क्ष्मानं प्रगतिनवजागर्तिषु मुने !
कृतज्ञो देशस्त्वां नमति बहुमानांचितमनाः ॥

लवपुरम्   [अठत्तर]   जन्माष्टमी १९३९

हे यतिवर —

अपने जीवन काल में लगातार जिसका प्रचार किया था तुमने,

उसको अब कहानी भर शेष बची है !

संकीर्ण मनोवृत्ति के तुम्हारे अनुयायी—

रूढ़िवाद के अड्डे बने हुए हैं !!

हे मननशील व्यक्ति !

प्रगतिशीलता और नव जागरण के लिये—

तुमने जो शंख एक बार फूंका था— उसके आभार रूप में—

अत्यन्त सम्मान से भरे मन का और

चिरकृतज्ञ यह भारत देश तुम्हें नमस्कार करता है !!!

लाहौर [उनासी] जन्माष्टमी १९३५

कालिदासं नमामि

(१)

पित्वा पित्वाऽमृतमिव गिरः स्वातिमेघाग्रबिन्दून्
तृप्तं नासीत्क्षणमपि मनश्चातकानां कृतीनाम् ।
खिन्ना देवा अवनिममृतादेकभावात् पिबन्ति
यस्यासाधामरमधुगिरं कालिदासं नमामि ।।

(२)

गर्वोद्दीसा कविकुलगुरोर्दिव्यवीणा-निनादै
र्धन्येयं भू यंदपि सकला पाविताऽलंकृता च ।
कूलं श्रीमद् विशद पुलिनं किन्तु गर्वाद् विशेषात्
तन्मातृत्वान्मुनि-तरणिजा रम्य गोदावरीणाम् ।।

कालिदास को नमस्कार !

(१)

मैं कालिदास को नमस्कार करता हूं—
स्वातिनक्षत्र के मेघ की पहली बून्दों के समान—
जिसकी वाणी के अमृत का बार-बार पान करके
क्षण भर के लिये भी,
विद्वान् रूपी चातकों का मन तृप्त नहीं हो पाता !
फीके अमृत के सदा एक जैसे स्वाद से खिन्न होकर,
देवता धरती पर आते हैं और उसकी वाणी के मधुर अमृत का
पान किया करते हैं !!

(२)

यह पूरी ही धरती—
गर्व से चम-चमा रही है, धन्य है, पवित्र और अलंकृत है,
जहां कविकुलगुरु की स्वर्गीय वीणा के तार गूंजे थे !
परन्तु विशेष रूप से गर्वित और सुशोभित है—
गंगा, यमुना और गोदावरी के विस्तृत और स्वच्छ पुलिन--
जिन्होंने महाकवि को जन्म दिया था !!

(३)

वृद्धे ! मा भूरदय-हृदया भारत-क्षोणि ! तस्मिन्
वाले यस्य श्रुति कलरवः सिन्धु पारेऽप्यगुंजत् ।
वाष्पैः पीडामलिखदिह ते मालिनी-तीर-रुद्धैः
कोऽन्यस्तस्मात्कथय सजलं कण्वकन्ये ! त्वमेव ॥

(४)

जंघे यस्याः पृथुलविशदे ते च काव्य-द्वये स्तः
वक्षो मित्रं विरह-रुदिता सोर्वशी प्रेमगाथा ।
मेघो दूतो विलसति वयो नव्य-शाकुन्तलं तु
चित्तेन्दुश्रीः सुकवि कविता कामिनी प्रीतये वः ॥

(३)

अरी, बेमुरव्वत, बुढिया, भारत भूमि !
उस बेटे पर इतनी बेरहम तो मत हो,
जिसकी कविता की मीठी तान समुद्र पार तक गूंजी थी !
हे कण्व मुनि की कन्या, शकुन्तला !
तू तो बता दे कम से कम—
जब विरह में रो-रो कर तूने मालन नदी के तट पर,
आँसुओं के कुण्ड भरे थे—
तेरे साथ किसकी आखें डबडबा आई थीं और
उसके अलावा किसने तेरे आंसुओं की स्याही से,
तेरे हृदय की व्यथा लिखी थी !!

(४)

महाकवि की कविता कामिनी— चित्तके चान्द की चान्दनी के समान,
तुम्हारे मन में आनन्द भरे,
रघुवंश और कुमार संभव दो महाकाव्य जिसकी मोटी और
सुथरी जांघें हैं,
मालविकाग्निमित्र, मित्र की तरह लुभावना जिसका सीना है,
विरह में बिलखती युवती और विक्रमोर्वशीय नाटक उसके
प्रेम की कहानी है,
मेघ और मेघदूत काव्य उसके सन्देशवाहक हैं,
सदा नई-नमेली शकुन्तला और शाकुन्तल नाटक उसका
यौवन है !!

(५)

मग्नश्चेत्त्वं क्षणमपि सखे ! प्रेम-सिन्धौ कदाचित्
क्षितौ भूयो मरुतपसि चेत् क्षुब्धमीनी-कृतात्मा ।
सौभाग्येण प्रणयिहृदयात् संगमाशा न भग्ना
धारासारो ज्वलनहरणो मेघदूतोऽस्तु दूतः ॥

(६)

पीतं देवै र्विरसममृतं तव नव्यं सदापि
सौन्दर्याणि प्रथित प्रकृतौ, तानि मूकानि किन्तु ।
मातृस्नेहो नियतमधुरः खिन्न एकांगिभावात्
नव्यामेनं पिब ! सुमधुरं कालिदासस्य काव्यम् ॥

(५)

हे मित्र !
अधिक नहीं, यदि क्षण भर के लिये भी तुम कभी—
प्रेम के सागर मे डूब पाये हो, और
बाद में फिर, विरह के तपते मरुस्थल में—
मछली की तरह तड़फने के लिये तुम्हें फेंक दिया गया हो,
और सौभाग्य से फिर भी—
प्रियजन से मिलन की तुम्हारी अभिलाषा भंग न हो पाई हो—
मुसलाधार बारिश करता और जलन दूर करता—
यह मेघ और मेघदूत— तुम्हारा भी दूत बने !

(६)

देवताओं ने फीके अमृत का पान किया है जो—
सदा नवीन नहीं रहता !
प्रकृति असीम सौन्दर्य की भण्डार है—
पर वे सौन्दर्य गूंगे है !!
माता का प्यार अनिवार्य रूप से मीठा है—
परन्तु एकतरफा होने से वह उदास रहता है !!!
तुम कालिदास की कविता का पान क्यों नहीं करते—
अमृत के समान है पर सदा नवीन है,
असीम सुन्दर है पर बोलती है,
मीठी है और साथ मे दो-तरफा है !

(७)

स्वर्गानन्दै–र्हृदयरमणीं रम्यकाश्मीर लक्ष्मीं
वायून्मादैः शिशिरनुदितैः कामदूतस्य गीतम् ।
उत्साहेभ्यस्तरुणवयसां वन्दितां वृद्धवृद्धिं
सार्कं चेतोऽभिलषति यदि ते कालिदासं पठस्व ॥

(८)

इन्दुर्भव्यो हरति हृदय राहुणा ग्रस्यतेऽसौ
स्फीतं गीतं बत परभृतः प्रावृषा रुध्यते तत् ।
चम्पा पुष्पं सुरभिमधुरं शैशिरं तन्निहन्ति
नित्यस्नेहं शिशिरहननं सत्कवेः काव्यमेतत् ॥

(७)

यदि तुम्हारा लोभी मन—
स्वर्ग के आनन्द के साथ काश्मीर का लुभावना सौन्दर्य भी
देखते रहना चाहता है !
पतझड़ द्वारा बहाये पवन के उन्मादक झोंकों के साथ —
कामदूत, कोकिल की तान भी सुनना चाहता है !!
नव यौवन के तरंगीत उत्साहों के साथ साथ —
वृद्धों का आदरणीय अनुभव भी रखना चाहता है, तो —
हे सखे !
एकाग्रता के साथ कालिदास का पठन करो !!!

(८)

चान्द कितना लुभावना है, मन हरता है —
परन्तु राहु उसे ग्रस लेता है !
देखो, कोकिल का गीत कितना मीठा और सुथरा है —
परन्तु वर्षांत उसे बंद कर देती है !!
चम्पा का फूल कितना सुगन्धित और प्यारा है —
परंतु पतझड़ उसे मुरझा देता है !!!
ऐसी वस्तु तो महाकवि की कविता ही है —
जो चाँद की तरह आकर्षक है – पर कोई राहु उसे नहीं ग्रसता,
जो मीठी और सुथरी है – पर कोई वर्षांत उसे बंद नहीं करती,
जो सुगंधित और प्यारी है – पर कोई पतझड़ उसे नहीं सताता !

(९)

एकाकारे कलयति मनो यस्य काव्ये स्वराणि
लज्जास्विन्ना क्षिपति जलधौ शारदा मूकवीणाम् ।
शब्दार्थोऽर्थस्तमनुसरते शब्द-कोशो विनीतः
वाग्याराध्यं कविकुलगुरुं कालिदासं नमामि ॥

(१०)

श्रावं श्रावं श्रुतिमधुगिरं कालिदासाम्बुदस्य
यो मत्तो नृत्यति शिखिसमो भिन्नचेतः – सुबर्हः ।
गायन् वाणीं सजल–नयनान् योऽन्तरङ्गानपूर्वं
चक्रे वृद्धान् विरचितमिदं तेन दीपङ्करेण ॥

(९)

कविकुल गुरु, कालिदास को प्रणाम करता हूँ :—

जिसकी कविता के संगीत में सातों स्वर एकाकार हो कर

गूंज उठते हैं,

सरस्वती लज्जा से पसीना पसीना हो उठती है

और अपनी गूंगी वीणा को झल्ला कर समुद्र में फेंक देती है,

जिसके अर्थ शब्दों का पीछा नहीं करते, बल्कि —

सम्पूर्ण शब्द भण्डार हाथ जोड़े – उसके अर्थ के

पीछे पीछे चलता है !

सब सरस्वती की आराधना करते हैं और सरस्वती—

अपने इस बेटे की आराधना करती है !!

(१०)

ये पंक्तियाँ दीपंकरने लिखी है :—

कालिदास रूपी मेघ की कविता का गर्जन सुन सुन कर,

जो पागल हो उठता है और अपने हृदय के पंख फैला कर —

मयूर की तरह नाच उठा करता है !

जिसने अक्षरों का ज्ञान पाने से पहले ही –

महाकवि की वाणी के पद गा गा कर —

कुलवृद्धों की आँखें बार बार आसुओं में भिगोई थीं !!

गुंजतु गगने तव गीतम्

(१)

किमु मरणं कम्पयति तनुं ते
जीवनमादर्शश्च प्रियं ते।
किमजयशंका स्पृशति पदं ते
चल प्रिय! लक्ष्यं चलति व्यतीतम्
गुंजतु गगने तव गीतम् ॥१॥

(२)

वदनं निष्प्रभमस्तु किमर्थं
दृढनिश्चय दिग्धं च समर्थम्।
वेपति मेरु जलधि गच्छति
तव यौवन-गीतं यदि गीतम्।
गुंजतु गगने तव गीतम् ॥२॥

आकाश में तेरा गीत गूंजे

(१)

मृत्युके भयने तेरा शरीर क्यों कपा दिया !

जीवन तुझे आदर्शों से प्यारा कैसे हो गया !!

पराजयके सन्देह ने तेरे कदमों को कैसे छू लिया !!!

हे प्यारे !

तुम चलो तो सही, मंजिल तो पीछे पड़ गई है और—भाग रही है !

आकाशमें तेरा गीत गूंजे ।

(२)

कहो, यह चेहरा कैसे फीका पड़ गया है !

तेरा समर्थ हृदय, निश्चय न कर पाने से —

बुझा – बुझा कैसे हो रहा है !!

अरे, मेरु पहाड़ कांपने लगता है —

समुद्र मार्ग दे देता है —

जब तेरे यौवनका गीत गाया जाता है !!!

आकाशमें तेरा गीत गूंजे ॥

(३)

जीवन-कामी मरणे स-रुचिः
भयरोधे तु न तद् वहति शुचि ।
संशयमनुधावति प्राण-पदं
भयतल्पेष्वसु - गीत गीतम् ॥
गुंजतु गगने तव गीतम् ॥३॥

(४)

स्थविरं किमु पश्यसि कार्यरतं
रिक्तोदर शिशुकं प्रिय ! रुदितम् ।
कर्मविदूरः श्राम्यति युवको
मौनं ? गा विद्रोह - प्रगीतम् ॥
गुंजतु गगने तव गीतम् ॥४॥

(३)

जो जीवनसे प्यार करता है, मरने में आनन्द लेता है !

भयका बान्ध लगने पर जीवन की पवित्र धारा नहीं बहती !!

जिसे साहस और बल कहते है — वह खतरों से हो कर —

गुजरता है !!!

और —

जीवनका गीत अ.लता की शय्या पर लेटे—लेटे —

गाया जाता है ?

आकाशमें तेरा गीत गूंजे ॥

(४)

बूढ़ा जब काम करता है —कैसे देख लेता है, तू !

हे प्रिय !

खाली पेट बच्चा भी रोता— बिलखता देख लिया तूने !!!

यह नवयुवक काम से दूर रहता -- रहता ही -- थक लिया है !!!

और चुप हो ?

बगावत के तीखे गीत गाओ !

आकाश में तेरा गीत गूंजे !

[तिरानवे]

(५)

युगतशत मृतको जीवति लोकः
जीर्णो जन मुखमुज्झति शोकः ।
दिव्यति नयनं रश्मि-वदनं
कुप्यति जनता ध्वनति च गीतम् ।।
गुंजतु गगने तव गीतम् ।।५।।

(६)

अधुना जीवन-भार-निराशः
नव जन उद्बोधन-कलिताशः ।
त्रुट्यति रूढिः शिथिलो बन्धः
भयमपि धावति जीयति भीतम् ।।
गुंजतु गगने तव गीतम् ।।६।।

(५)

सदियों के निष्प्राण जीवन, फिर से जी उठे हैं !

जनता के चेहरे का पका शोक -- मुखों से अलग हो रहा है !!

आंखें चमक उठी हैं और मुख लाल हो गये हैं !!!

जनता क्रोध में है और ललकार रही है !

आकाश में तेरा गीत गूंजे !!

(६)

जो जीवन को भार समझते थे – निराश थे,

वे जागरण में आशा पकड़ कर - नये मन हो उठे हैं !

रूढ़ियाँ टूट रही हैं,

बन्धन ढीले पड़ रहे हैं,

डर भी डर गया है —

घुल - घुल रहा है और भाग रहा है !!!

आकाश में तेरा गीत गूंजे —

जीवन सम्बोधनम्

(१)

दीप्तासीन्मम मानि-जीवन शिखा ऽभावान्धकारे गुरौ
भूयोपि ज्वलनं व्यथाघनघटात्रासेषु वा शिक्षितम् ।
अस्तित्वेषु च नानुकूलपवनाघाते कृतः साहसः
सर्वं विस्मर, जीवन ! क्षणमिदं बाल्यन्तु मा विस्मर ॥

(२)

धाराध्वस्ततटा समं पशुगणैस्तीर्णा यदा सूर्यजा
मध्याह्नेषु वनेषु जरिड विटपे रूढेन दृष्टाश्चते ।
गोपालाननियंत्रितान् स्मरसि किं येषां स्वकीया स्मृतिः
श्रान्तस्त्वं दिवसश्रमेण विकलो प्रस्वापितो निद्रया ॥

जीवन से दो बातें

(१)

मेरे मानी जीवन की लौ —
अभावों के गहरे अन्धकार में जली थी !
व्यथाओं और चिन्ताओं की घन घटाओं के आतंक में —
उसने लगातार जलते रहना सीखा था !!
प्रतिकूल हवाओं के धक्के खा - खा कर —
उसने अस्तित्व कायम रखने का साहस किया था !!!
अरे, जीवन ! चाहे सब कुछ भुला देना —
पर क्षण भर के लिये भी उस शैशव को मत भूल बैठना !

(२)

याद हैं वे पुराने दिन जब —
सूर्य की बेटी जमुना को -- जो वर्षांत की प्रबल धाराओं से किनारे
तोडती रहती थी — तुम पशुओं का झुंड साथ लिये पार किया
करते थे !
जब बियाबान जंगलों में, दोपहरियों में, जांड़ के पेड़ पर टंगे तुम -
दूर दूर तक पशुओं को निहारा करते थे !!
वे बे-लगाम चरवाहे, पाली तो याद होंगे ही —
जिनके कायदे -- कानून बिल्कुल निराले होते हैं !!!
जब दिन भर की दौड़ - धूप से थके और परेशान तुम्हें,
नीन्द खुद ही सुला दिया करती थी !

[सतानबे]

(३)

भ्रातः! पण्डित ताडनं स्मरसि किं स्वाध्याय-विद्रोहि ते
यस्त्वाद्वादशमापद च्युतिमहो. मौर्ख्यं ललाटेऽलिखत् ।
तां रात्रिं स्मर शारदार्चनमति स्त्यक्त्वा गृहं प्रस्थितः
यत्कुत्रापि गतः कृतं तव जनै हर्षाश्रुणा स्वागतम् ॥

(४)

क्रीडद्भिः परिमुग्धगोप तरुणं र्बाल्यं वयः पोषितं
तैस्तैरेव पुनस्तवाऽपरिचितैः कौमार्यमावर्द्धितम् ।
त्वय्यासीच्च परोपकारि-जनता तारुण्य आर्द्राक्षिणी
यत् किंचित्त्वयि तत्परैः सुघटितं वृत्तिः परार्थास्तु ते ॥

जीवन सम्बोधनम्

(१)

दीप्तासीन्मम मानि-जीवन शिखा ऽभावान्धकारे गुरौ
भूयोपि ज्वलनं व्यथाघनघटात्रासेषु वा शिक्षितम् ।
अस्तित्वेषु च नानुकूलपवनाघाते कुतः साहसः
सर्वं विस्मर, जीवन ! क्षणमिदं बाल्यन्तु मा विस्मर ॥

(२)

धाराध्वस्ततटा समं पशुगणैस्तीर्णा यदा सूर्यजा
मध्याह्नेषु वनेषु जरिड विटपे रूढेन दृष्टाश्चते ।
गोपालाननियंत्रितान् स्मरसि किं येषां स्वकीया स्मृतिः
श्रान्तस्त्वं दिवसश्रमेण विकलो प्रस्वापितो निद्रया ॥

जीवन से दो बातें

(१)

मेरे मानी जीवन की लो —
अभावों के गहरे अन्धकार में जली थी !
व्यथाओं और चिन्ताओं की घन घटाओं के आतंक में —
उसने लगातार जलते रहना सीखा था !!
प्रतिकूल हवाओ के धक्के खा - खा कर —
उसने अस्तित्व कायम रखने का साहस किया था !!!
अरे, जीवन ! चाहे सब कुछ भुला देना —
पर क्षण भर के लिये भी उस शैशव को मत भूल बैठना !

(२)

याद हैं वे पुराने दिन जब —
सूर्य की बेटी जमुना को -- जो वर्षात की प्रबल धाराओं से किनारे तोड़ती रहती थी — तुम पशुओं का झुंड साथ लिये पार किया करते थे !
जब बियाबान जगलों मे, दोपहरियों में, जांड़ के पेड़ पर टंगे तुम -
दूर दूर तक पशुओं को निहारा करते थे !!
वे बे-लगाम चरवाहे, पाली तो याद होंगे ही —
जिनके कायदे -- कानून बिल्कुल निराले होते हैं !!!
जब दिन भर की दौड़ - धूप से थके और परेशान तुम्हें,
नीन्द खुद ही सुला दिया करती थी !

जीवन सम्बोधनम्

(१)

दीप्तासीन्मम मानि-जीवन शिखा ऽभावान्धकारे गुरौ
भूयोपि ज्वलनं व्यथाघनघटात्रासेषु वा शिक्षितम् ।
अस्तित्वेषु च नानुकूलपवनाघाते कृतः साहसः
सर्वं विस्मर, जीवन ! क्षणमिदं बाल्यन्तु मा विस्मर ॥

(२)

धाराध्वस्ततटा समं पशुगणैस्तीर्णा यदा सूर्यजा
मध्याह्नेषु वनेषु जरिड विटपे रूढेन दृष्टाश्चते ।
गोपालाननियंत्रितान् स्मरसि किं येषां स्वकीया स्मृतिः
श्रान्तस्त्वं दिवसश्रमेण विकलो प्रस्वापितो निद्रया ॥

जीवन से दो बातें

(१)

मेरे मानी जीवन की लौ —

अभावों के गहरे अन्धकार में जली थी !

व्यथाओं और चिन्ताओं की घन घटाओं के आतंक में —

उसने लगातार जलते रहना सीखा था !!

प्रतिकूल हवाओं के धक्के खा - खा कर —

उसने अस्तित्व कायम रखने का साहस किया था !!!

अरे, जीवन ! चाहे सब कुछ भुला देना —

पर क्षण भर के लिये भी उस शैशव को मत भूल बैठना !

(२)

याद हैं वे पुराने दिन जब —

सूर्य की बेटी जमुना को -- जो वर्षात की प्रबल धाराओं से किनारे तोड़ती रहती थी — तुम पशुओं का झुंड साथ लिये पार किया करते थे !

जब बियाबान जंगलों में, दोपहरियों में, जांड़ के पेड़ पर टंगे तुम - दूर दूर तक पशुओं को निहारा करते थे !!

वे बे-लगाम चरवाहे, पाली तो याद होंगे ही —

जिनके कायदे -- कानून बिल्कुल निराले होते हैं !!!

जब दिन भर की दौड़ - धूप से थके और परेशान तुम्हें,

नीन्द खुद ही सुला दिया करती थी !

(३)

भ्रातः! पण्डित ताडनं स्मरसि किं स्वाध्याय-विद्रोहि ते
यस्माद्द्वादशमापद क्षतिमहो, मौर्ख्यं ललाटेऽलिखत् ।
तां रात्रिं स्मर शारदार्चनमति स्त्यक्त्वा गृहं प्रस्थितः
यत्कुत्रापि गतः कृतं तव जनै हर्षाश्रुणा स्वागतम् ॥

(४)

क्रीडद्भिः परिमुग्धगोप तरुणै बाल्यं वयः पोषितं
तैस्तैरेव पुनस्तवाऽपरिचितैः कौमार्यमावर्द्धितम् ।
त्वय्यासीच्च परोपकारि-जनता तारुण्य आर्द्राक्षिणी
यत् किंचित्त्वयि तत्परैः सुघटितं वृत्तिः परार्थास्तु ते ॥

(३)

भाई !

पण्डित जी की उस मार को तो तुम भूले ही नहीं होगे,

जिसने पढ़ाई के विरुद्ध तुममें बगावत के भाव भरे थे,

जिसने बारह साल की उम्र तक, पांव के टूट लेने तक —

तेरे माथे पर "मूर्खता" के अक्षर लिख डाले थे !

उस रात की याद करो जब,

सरस्वती की आराधना करने के दृढ़ संकल्प के साथ,

घर छोड़ कर चल पड़े थे, और —

जहां कहीं भी गये थे लोगों आनन्द के आंसुओं के साथ —

तेरा स्वागत किया था !!

(४)

उन भोले - भाले और खेलते - खालते,

चरवाहे नवयुकों के बीच तेरा शैशव पुष्ट हुआ था !

उन सैकड़ों हजारों अपरिचितोंने,

तेरा कुमार जीवन भरा - पूरा किया था !!

नव यौवन में —

परोपकारी जनता की आंखें तेरे लिये सदा गीली थीं !!!

जो कुछ भी तुझमें है उसे दूसरों ने —

बना-बना कर तुझमें रखा है !

तेरा मन और निगाहें उन्हीं में लगी रहें !!

(५)

नासीत्ते जननी सहस्रजननी-क्रोडन्तु खेलास्थली
पित्रैकेन च वंचितः शतपिता लोकस्य ते पालकः ।
प्रेम्णा तेऽश्रुजलं विषाद जलदस्रावे जनैः प्रोक्षित
आत्मानं स्मर मा सखे, सुकरुणापूर्णो जने मग्नधिः ॥

(६)

धारा जीव, वहन्ति निर्झर-झरै रुद्धस्तडाकेस्तु मा
आदर्शाय तु जीवनं, वत ! मुधा मोहे निमग्नोस्तु मा ।
मास्तां नौ गतिरोधविभ्रमगता भीतिस्तु लज्जास्पदा
मा कस्यापि पुरोऽनतं तव शिरो मास्तां परं चोद्धतः ॥

केन्द्रीय कारागारम् (लवपुरम्) २१ सितम्बर १९४३

(५)

एक ही तो मां से हाथ धोया था तूने —
हजारों माताओं ने अपनी गोद तुझे खेलने को दी !
एक ही पिता के प्यार से वंचित थे तुम,
समाज के सैकड़ों पिताओं ने प्यार से तेरा भरण-पोषण किया था !!
जब दुःखों और चिन्ताओं के बादल चुआ करते थे,
लोगों ने स्नेह से तेरी आखों का पानी पोंछा था !!!
हे मित्र !
अपने आपको याद मत करो, दया से ओत - प्रोत इन
लोगों में डूब जाओ और डूबने का ज्ञान भी मत करो !

(६)

हे जीवन !
छोटे बड़े बहुत से झरनों और नदी-नालों से मिल कर,
जीवन की धारा बहती है —
किसी जोहड़ में मत रुका रह !
जीवन तो आदर्श के लिये ही होता है, परन्तु —
आदर्श के झूठे मोह में मत डूबे रहना !!
तेरी नौका,
गतिरोध के भंवर में कभी ना फंसे, परन्तु —
भंवर से डरना लज्जाजनक है !!!
तेरा सिर किसी के सामने झुकने के लिये नहीं है, परन्तु —
उद्धत और अभिमानी मत होना !

सेन्ट्रल जेल (लाहौर) २१ सितम्बर १९४२

पाठकों से

प्रार्थना है कि नीचे लिखे संशोधनों के आधार पर पढ़ना प्रारंभ करने से पहले अशुद्धियां शुद्ध कर लीजिये। जल्दी जल्दी में ये त्रुटियां रह गई हैं। पाठक क्षमा करेंगे।

—: मुद्रक :—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	१	जनिन	जनिता
१०	२	नचापि	चापि
१०	६	कर्त्यानां	मर्त्यानां
१२	६	सोऽपि	सोऽप्यापि
१२	७	काम्यतु	क्षाम्यतु
१६	२	नित्तेक्षण	चित्तेक्षण
२२	४	स्वर्गायिवर्गेषु	स्वर्गापवर्गेषु
२५	१ से पहले	सेगांवके सन्त के प्रति — शीर्षक छूट गया है	
३२	४	कशा	काशा
३३	३	सुधा	सुधां
४०	१	कृष्णाङ्कनानां	कृष्णाङ्गनानां
८६	५	हृदय	हृदयं
१००	३	प्रोक्षित	प्रोक्षितं

कौटिल्यकालीन भारत

कौटिलीय अर्थशास्त्र तथा अन्य महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर लिखित इस ग्रन्थ में पढ़िये कि भारतीय साम्राज्यवाद की अपनी क्या विशेषतायें थीं, सम्पूर्ण राजनैतिक भारत पर उसकी पूर्ण विजय की क्या पृष्ठ भूमि थी और अपने यौवन काल में भारतीय साम्राज्यवाद पुरानी जर्जरित सामाजिक व्यवस्थाओं को नियन्त्रित करते करते कैसे उन्हें जीवन प्रदान करता था और साथ ही इस यौवन प्राप्त साम्राज्यवाद के गर्भ में पूंजीवाद प्रवेश कर रहा था जिसे वह हर प्रकार का संरक्षण प्रदान करता था। पुस्तक रोचक है और यथा शीघ्र प्रकाशित हो रही है।

सरस्वती प्रेस,
मेरठ।